पंचम अध्याय

असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का सांस्कृतिक जीवन

''असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का सांस्कृतिक जीवन''

प्रास्ताविक -

भारत संस्कृति प्रधान देश है। विविधता में एकता यह उसकी विशेषता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भारत अनेक जाति और धर्मों की संस्कृतियों का संगमस्थल रहा है। भारतीय जनमानस आज भी अपने अतीत की संस्कृति को गौरवपूर्ण महसूस करता है। आज भी हम उस संस्कृति को आदर्श मानते हैं क्योंकि वह हमारी आज की संस्कृति की आधारशिला है। विख्यात समाजशास्त्री डॉ. योगेश अटल का कथन विचारणीय है- ''कोई भी संस्कृति अपने अतीत को नहीं लौटा सकती। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने अतीत से दूर जाती है। अतीत उसके वर्तमान की आधारशिला है और उसका भविष्य वर्तमान की उभरी हुई भित्तियों पर ही निर्मित होने को है।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि अतीत की संस्कृति पर ही मानव-जीवन का भविष्य निर्भर होता है। 'संस्कृति' शब्द के कोशगत अर्थ के संदर्भ में विद्वानों की अलग-अलग धारणाएँ प्रचलित हैं- 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ- ''संस्कार, शुद्धता, उत्तमता''[2] दिया है। 'भारतीय संस्कृति कोश' में ''सामाजिक परंपरा से प्राप्त संस्कार और व्यवहार''[3] को संस्कृति माना है। हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग) में डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'संस्कृति' को ''रहन-सहन की रूढ़ि''[4] कहा है। 'हिंदी साहित्य कोश' में लिखा है- ''संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (त्र) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।''[5] रामचंद्र वर्मा ने 'प्रामाणिक हिंदी कोश' में संस्कृति के अंतर्गत मन, रुचि,

---

1. सं. हिमांशु जोशी - 'वागर्थ' मासिक पत्रिका, फरवरी, 2003, पृ. 21
2. सं. रामचंद्र वर्मा - संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, पृ. 944
3. सं. लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय' - भारतीय संस्कृति कोश, पृ. 916
4. सं. डॉ. श्यामसुंदर दास - हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग), पृ. 3415
5. सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा - हिंदी साहित्य कोश, पृ. 801

आचार-विचार, कला-कौशल्य और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास-सूचक बातें ली हैं।''[1]

उपर्युक्त अर्थों के आधार पर 'संस्कृति' शब्द के अर्थ संबंधी मेरी अपनी विनम्र धारणा है कि 'संस्कृति' से तात्पर्य- शुद्धता, सभ्यता, कलात्मकता और मानवता का समूह; जिससे मानव-जीवन में पावित्र्य और मांगल्य का प्रवेश होता है।

भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। आज की संस्कृति उसी का रूप है। यह संस्कृति हमें परंपरा से मिलती है। संस्कृति का संबंध परंपरागत विचारों एवं उससे संबंधित मूल्यों से होता है। मानव उस परंपरा को किस रूप में ग्रहण करता है यह महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि डॉ. अर्जुन चव्हाण जी के अनुसार- ''शुद्ध आचरणगत परंपरा का दूसरा नान संस्कृति है।''[2] अतः स्पष्ट है कि परंपराओं के शुद्ध आचरण से ही मानव-जीवन सुसंस्कृत बनता है। परंपरागत संस्कृति का जतन करना वर्तमान पीढ़ी के हाथ में होता है, क्योंकि उसी संस्कृति को हमें अगले पीढ़ी को सौंपना यह हमारा कर्तव्य होता है। इसलिए वर्तमान पीढ़ी के रोजमर्रा जीवन में उसके संस्कारों के आदर्श झलकने चाहिए। डॉ. त्रिभुवन राय की टिपण्णी दृष्टव्य है- ''संस्कृति के आदर्श निस्संदेह कल्पना के आकाश में नहीं, जीवनगत व्यवहार एवं आचरण में रूपायित एवं विकसित होते हैं।''[3] अतः कहना सही होगा कि संस्कृति की गरिमा और प्रतिष्ठा मनुष्य के आचरण से विकसित होती है। आज पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के कारण भारतीय संस्कृति पर प्रश्नचिह्न उभर रहे हैं। हम विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं है की हम अपने अध्यात्मिक ज्ञान और सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को छोड़ दें। डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम का कथन विचारणीय है- ''हमें अपने विकास के आदर्श अपनी संस्कृति से प्राप्त शक्ति पर ही विकसित करने हैं।''[4] उपर्युक्त कथन के आधार पर कहना सही होगा कि मानव वैज्ञानिक क्षेत्र में हो या अन्य किसी भी क्षेत्र में हो जब तक संस्कृति का दामन पकड़ा हुआ है तब तक मानव है। मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन ही समाज का नियंता है।

---

1. सं. रामचंद्र वर्मा - प्रामाणिक हिंदी कोश, पृ. 1259
2. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृ. 29
3. सं. डॉ. केशव फालके - हिंदी साहित्य : पचास वर्ष, पृ. 119
4. डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, अनु. चंद्रशेखर मुरगुडकर - प्रज्वलित मने, पृ. 78

5.1 विवेच्य उपन्यास में चित्रित सांस्कृतिक जीवन के विविध अंग -

संस्कृति में मानव जीवन और समाज की समग्रता दृष्टिगोचर होती है। इसमें कला, दर्शन, जीवनमूल्य, मानवीय संबंध, आस्था, आचरण, शिष्टाचार, हमारा रहन-सहन, खान-पान, उत्सव-पर्व आदि अनेक पक्ष समाहित होते हैं। असगर वजाहत जी ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। यहाँ प्राप्त चित्रण के आधार पर सांस्कृतिक जीवन के विविध अंगों का विवेचन प्रस्तुत है-

5.1.1 रीति-रिवाज और परंपराएँ -

समाज में कुछ विशिष्ट रीति-रिवाज और परंपराएँ प्रचलित होती हैं। हर धर्म के रीति-रिवाज और परंपराओं के नियम अलग होते हैं। अपने पूर्वजों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज को यह प्राप्त होते हैं। समाज के लोग उनका कड़ाई से पालन करते हैं। समाज के जो सदस्य इनका उल्लंघन करते हैं उसे अनुचित माना जाता है। रीति-रिवाजों में परिवर्तन संभवता नहीं होता फिर भी कुछ विशिष्ट कारणवश उसमें परिवर्तन होता है। डॉ. कृष्णा अवस्थी के अनुसार- "समाज में क्रांतिकारी घटनाओं, परिस्थितियों या व्यक्तियों के प्रभावस्वरूप अथवा सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होने पर रीति-रिवाज भी बदलते हैं।"[1] स्पष्ट है कि रीति-रिवाजों में समयानुकूल परिवर्तन होता है, किंतु इस परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत धीमी गति से होती है। असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में रीति-रिवाज और परंपराओं में हो रहे अच्छे-बूरे परिवर्तनों का यथार्थ चित्रण मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास में अन्य धर्मों की तुलना में मुस्लिम धर्म के रीति-रिवाजों का चित्रण अत्याधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। मुस्लिम संस्कृति में पुरुषों की अपेक्षा नारी में रीति-रिवाजों की जड़ता अधिक मात्रा में परिलक्षित होती है। औरतों को पर्दा करना आवश्यक माना जाता है। औरतों का अन्य पर्दों के सामने आना अनुचित माना जाता है। कथा-नायक का परिवार बड़ा था। घर में यासीन मियाँ रिश्तेदार थे फिर भी घर की औरतें उनसे पर्दा करती थीं। लेखक लिखते हैं- "घर की औरतें यासीन मियाँ से उसी तरह पर्दा करती थीं जैसे दूसरों से। घर की बड़ी-बूढ़ियों जैसे मुन्नीबाजी तक उनसे पर्दा करती थीं।"[2] स्पष्ट है कि प्राचीन काल में विशिष्ट

---

1. डॉ. कृष्णा अवस्थी - वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन - पृ. 270
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 28

कारणवश निर्माण हुई इस परंपरा को दुर्भाग्यवश आज भी नारी ढोती आ रही है। वह अपने रिश्तेदारों से भी खुले रूप से बोल नहीं सकती। घर की मान-मर्यादा की सारी जिम्मेदारी स्त्री पर ही थी। नारी की तरह पुरुषों में भी रीति-रिवाज प्रचलित थे। अब्बा मियाँ कुटुंब प्रमुख होते हुए भी घर के अंदर की दुनिया से ज्यादा लगाव न रखते थे- ''अब्बा मियाँ साल में दो ही चार बार घर के अंदर आते थे। उनके अंदर आने से पहले अँगनू ड्योंढ़ी पर खड़े होकर ऐलान कर देता था कि मियाँ अंदर आ रहे हैं।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि घर की मान-मर्यादा और नैतिकता की रक्षा करना सबसे बड़ा उद्देश्य है, किंतु इन रीति-रिवाजों के कारण नारी को घर की चार दीवारी के बाहर की दुनिया का पता ही नहीं चला। स्वातंत्र्योत्तर काल में इसमें कुछ हद तक परिवर्तन परिलक्षित होता है। अम्मा के बारे में कथन दृष्टव्य है- ''अम्मा को घूमना-फिरना और सैर करना पसंद था। अपनी बहन के साथ कभी किसी बड़े शहर घूमने जाती थी, कभी किसी पहाड़ पर जाती थीं।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि घरों की मान-मर्यादा के नाम पर चार दीवारों के अंदर अपना जीवन बीताने में अभिशप्त नारी में आज कुछ हद तक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। सदियों से रीति-रिवाजों और परंपराओं के बंधन में जकड़ी हुई नारी आज मुक्त हवा में साँस लेती हुई अपने व्यक्ति-स्वातंत्र्य का आभास पा रही है।

बड़ों का आदर करना, उनकी बातों को मानना हमारी परंपरा है। उनकी बातें पत्थर की लकीर समझी जाती है। चाहे वह सही हो या गलत। कौकब आगा के बेटे ख्रिश्चन स्कूल में पढ़ते हैं। उनके रिश्तेदार उसे स्कूल से निकालने के लिए कौकब आगा के पास झूठी शिकायत करते हैं जो कौकब आगा को सही लगती है। कौकब आगा खालु को बुलाकर कल से स्कूल न जाने का आदेश देते हैं। लेखक लिखते हैं- ''खालू ने हैरत से अपने अब्बा हुजूर की तरफ देखा। दिल में सवाल पैदा हुआ कि आखिर क्यों ? क्या हो गया ? किसलिए ? लेकिन बुजुर्गों से सवाल करना या कुछ पूछना सख्त बद्तमीजी मानी जाती थी। खालू ने सिर झुकाकर कहा, 'जो हुक्म हो' ।''[3] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि रस्म-रिवाजों में सुधारों की आवश्यकता है, क्योंकि जो रस्म-रिवाज समाज के भविष्य को खतरे में डालते हैं उसमें परिवर्तन आवश्यक हो जाता

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 29
2. वही, पृ. 183
3. वही, पृ. 204

है। मुस्लिम धर्म में बच्चों को बचपन से ही उनके धर्म ग्रंथ 'कुरान' को पढ़ाया जाता है जिससे उन्हें अपने धर्म के बारे में सही जानकारी होती है। यह बात अलग है कि आज कुछ धर्मांध लोग अपने स्वार्थ के लिए कुरान के गलत अर्थ का प्रसार करते हुए समाज में आतंक फैलाने का कार्य करते हुए परिलक्षित होते हैं।

5.1.2 उत्सव एवं त्यौहार -

भारतवर्ष उत्सवों एवं त्यौहारों का देश है। त्यौहार एवं उत्सवों से समाज में एकता, सामूहिकता, बंधूता, प्रेम आदि के दर्शन होते हैं। व्यस्ततापूर्ण जीवन से कुछ समय निकालकर मनुष्य उत्सवों एवं त्यौहारों में अपने मित्र और सगे-संबंधियों के बीच मिलकर आनंदोत्सव मनाते हैं जिससे उन्हें नए उल्लास एवं उमंग के साथ जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। उत्सव एवं त्यौहार धूमधाम से मनाए जाते हैं। उत्सव के संदर्भ में महादेव जोशी ने लिखा है- ''जिस धार्मिक समारोह में लोगों को हर्ष, आनंद और मनःप्रसाद की अनुभूति मिलती है, उसे उत्सव कहा जाता है।''[1] प्राचीन काल से हमारे उत्सव और त्यौहार वेदोक्त धर्म-संस्कारों पर आधारित थे। वह धर्म-संस्कार खुद को शास्त्र के आधार पर ढलने के पश्चात् ही समाज में रूढ़ होते थे। कहना सही होगा हमारे उत्सव एवं त्यौहारों की परंपरा शास्त्रीयता को साथ लेकर आए हैं। उनमें आडंबर को स्थान नहीं था। किंतु आज के उत्सव विज्ञान अधिष्ठित हो रहे हैं; जो विज्ञान समाज में सिर्फ विघातक और ऐहिक उपभोग को प्रोत्साहन देता है। इसी कारण ही शरद उपाध्ये लिखते हैं- ''विज्ञान के आधार पर उत्सव मनाने चाहिए, विज्ञान के उपभोग से नहीं।''[2] स्पष्ट है उत्सवों में विज्ञान उपभोग के रूप में नहीं बल्कि आधार के रूप में प्रचलित हो। नई पीढ़ी उत्सव एवं त्यौहारों को सिर्फ अपने ऐहिक उपभोग के साधन के रूप में मना रहे हैं। जो हमारी संस्कृति को ह्रास की ओर ले जानेवाली प्रवृत्ति है। हमारे भारतीय संस्कृति में सदियों से विविध धर्मों के अनेक उत्सव एवं त्यौहार घुलमिल कर मनाने की परंपरा परिलक्षित होती है। हर धर्म के लोग प्यार-मोहब्बत से उत्सव एवं त्यौहार मनाते हैं जिससे आत्मिक सुख और आनंद की प्राप्ति होती है।

---

1. सं. महादेव शास्त्री जोशी - मुलांचा संस्कृति कोश (प्रथम खंड), पृ. 185
2. सं. भारतकुमार राऊत - दै. 'महाराष्ट्र टाईम्स', रविवार 28 दिसंबर, 2003, पृ.

'सात आसमान' उपन्यास में भारतीय संस्कृति की मुख्य धरोहर उत्सवों और त्यौहारों का चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। मुगलकाल में इदे, शुबरात, बारावफात आदि उत्सवों पर खास दरबार लगते थे। विशेष भोज का आयोजन होता था। नाच-रंग, मनोरंजन की धूम होती थी। महल-नगर सजाएँ जाते थे। बादशाह को राजछत्र प्रदान करने की विधि को भी उत्सव के रूप में मनाया जाता था। गाजीउद्दीन हैदर के बादशाह पद के लिए घोषणा हो जाने के बाद पूरे राज्य में जोर से तैयारी शुरू हो गई। कारीगरों ने सोने, चांदी और मोतियों से छत्र और तख़्त बनाया। उन्हें कीमती और शानदार कपड़े दिए गए। उत्सव का चित्रण द्रष्टव्य है- "तीन दिन के जश्न और चिरागाँ के बाद, तोपों की गड़गड़ाहट, शहनाइयों की आवाजों, नक्कारखाने की घनगरज के बाद गाजीउद्दीन हैदर तख्त पर बैठ गए।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि मुघलकाल में बादशाह हर अच्छी घटना का आनंदोत्सव मनाते थे। यह घटना निम्न और मध्यवर्गीय लोग उत्सव के रूप में मनाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

हिंदू और मुसलमानों के अनेक उत्सव तथा त्यौहार मिल-जुलकर मनाने की हमारी परंपरा है। स्वाधीनता के बाद भी यह परंपरा निरंतर चलती रही। कथा-नायक मुसलमान है। उनके घर में मोहर्रम, ईद आदि त्यौहार बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। कथा-नायक के दादा अब्बाँ मियाँ इस उत्सव में हिंदू-मेहमानों और दोस्तों को निमंत्रित करते हैं, किंतु वह उनके धर्म का भी खयाल रखते थे। इसलिए वह उनकी खातिरदारी भी हिंदू पद्धति से करने के पक्ष में थे। लेखक लिखते हैं- "मेहमानों की खातिरदारी के भी उनके अपने तरीके थे। हिंदू मेहमानों के लिए हिंदू रसोइया बुलाया जाता था। वह अपने बर्तन साथ लाता था। उसे सूखी जिन्स दी जाती थी और वह बड़ी नीम के नीचे ईंटें रखकर चूल्हा बनाता था और शुद्ध खाना तैयार करता था।"[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि हिंदू और मुसलमानों के त्यौहारों में धर्म कोई रूकावट नहीं बनता था, किंतु अगर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखेंगे तो आज राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में कुछ घिनौनी साजिशों का स्वार्थवश समावेश हो रहा है, जिससे समाज वर्ग-वर्ग में बंट रहा है। अतः धर्म को धर्म तक सीमित रखकर और विरासत की संस्कृति का आदर्श रखकर सभी धर्म

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 119
2. वही, पृ. 50

के लोग त्यौहार एवं उत्सव मिल-जुलकर मनाते हैं तो समाज में फैल रही कुप्रथाओं का विनाश होकर भारत फिर से अखंड़ हो जाएगा।

5.1.3 ***रहन-सहन*** -

रहन-सहन भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं में से एक है। हर धर्म का रहन-सहन अलग होता है उसी तरह हर वर्ग का रहन-सहन अलग होता है। 'सात आसमान' उपन्यास में ज्यादातर उच्च श्रेणी के मुसलमानों के रहन-सहन का वास्तविक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। सामंती वर्ग जमींदारी खत्म होने के बाद व्यापार और राजनीति में सक्रिय होकर पूँजीवादी बन गया। इसलिए उनके रहन-सहन में स्वातंत्र्योत्तर काल में भी सामंती काल का प्रभाव परिलक्षित होता है। उच्च श्रेणी के ज्यादातर मुसलमान शान से रहते थे। नौकर-चाकर, कीमती मोटरें, फर्नीचर, सजावट का सामान रखना वह अभिमानास्पद मानते थे। पुरुषों को शिकार खेलने का शौक था- ''खास तौर पर जाड़ों के दिनों में वे लोग कई मोटरों का काफला बनाकर तराई के जंगलों की तरफ निकल जाते थे और हफ्तों शिकार खेला करते थे। शिकार पर काफी पैसा खर्च करते थे।''[1] उक्त उद्धरण से उच्चवर्गीयों के शाही शौक दृष्टिगोचर होते हैं। इसके पीछे आर्थिक विपुलता महत्त्वपूर्ण कारण है। इस वर्ग की जायदाद होने के कारण नौकरी के प्रति उदासीनता दिखाई देती थी। सभी लोगों की अन्य मनोरंजन के साथ शेरो-शायरी में ज्यादा दिलचस्पी दिखाई देती थी।

उच्च वर्ग की मुसलमान स्त्रियाँ ज्यादातर खुद की सुंदरता की तरफ ज्यादा ध्यान देती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। कथा-नायक के नाना के परिवार की स्त्रियाँ घर का कोई काम नहीं करती थीं। लेखक का कथन दृष्टव्य है- ''बेगमें किसी तरह का कोई काम न करती थी। खाना पकाने की बात तो दूर, वो ऐसा काम भी नहीं करती थीं जैसे- सिलाई, कढ़ाई, बुनाई और घर की सफाई वगैरा। हर काम के लिए तरह-तरह के नौकर थे और वही सब काम करते थे।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से उच्चवर्गीय स्त्रियों की घर के काम के प्रति उदासीनता दृष्टिगोचर होती है। उनके रहन-सहन में सुंदरता को अनन्यसाधारण महत्त्व दिखाई देता है। वह अपने हाथ-पैरों में मेहंदी तथा आँखों में सुरमा लगाती हैं। पान लिपस्टिक का काम करता है। इत्र, खुशबूदार तेल सभी

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 142
2. वही, पृ. 143

काम में लाते हैं। नाना के परिवार के स्त्री-पुरुष नाच-गाने और अन्य मनोरंजन के साधन वक्त काटने के लिए उपयोग में लाते थे। उनके मनोरंजन के बारे में लेखक लिखते हैं- ''नाच-गाने में दिलचस्पी मर्द ही नहीं, बेगमें भी लेती थी और अक्सर डोमनियाँ महल के अंदर गाना सुनाने आती थीं। रात-रात भर महफिलें आरास्ता रहती थीं। दिन के वक्त ताश, चौसर और शतरंज की बाजियाँ छि जाती थीं जो दोपहर के खाने के वक्त तक जारी रहती थीं।''[1] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि उच्चवर्गीय स्त्री-पुरुष रहन-सहन में मनोरंजन को ज्यादा स्थान देते हैं। उनका रहन-सहन आत्मकेंद्रित मनोवृत्ति का परिचायक है और उनकी दुनिया परिवार तक ही सीमित परिलक्षित होती है।

5.1.4 खान-पान -

भारतीय समाज-जीवन में खान-पान की विविधता दृष्टिगोचर होती है। साथ ही ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक संपदाओं के कारण भी भारत में खान-पान संबंधी वैविध्यता परिलक्षित होती है। खान-पान की रीतियों से हमारे सांस्कृतिक स्थितियों का अंदाजा आता है। डॉ. उषा भटनागर लिखती हैं- ''भोज्य सामग्री उसे पकाने का ढंग और साथ ही खाने का ढंग भी हमारे सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं।''[2] स्पष्ट है कि खान-पान की हर विधि में हमारी संस्कृति झलकती है। कहना गलत न होगा कि भोजन सिर्फ पेट भरने का साधनमात्र न होकर वह परिवार के सद्भाव, प्रेम और शिष्टाचार का परिचायक होता है। असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में खान-पान संबंधी यथार्थ चित्रण किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में उच्चवर्गियों के खान-पान संबंधी चित्रण की अधिकता है। उनके खाने में दूध-दही, चावल, सब्जी, गाढ़ी दाल, लहसुन का बघार, पूड़ियाँ, कचौड़ी, पतले-पतले फुलके, पारी का गुड़ और गोश्त आदि व्यंजन परिलक्षित होते हैं। घरों में दोपहर के वक्त आम की कैरियों का शरबत बनाया जाता है। मुगलकालीन बादशाहों के खाने में विभिन्न प्रकार के मांस और फुलाव आदि स्वादिष्ट वस्तुएँ रहती थी। उन्हें हर समय घी युक्त पदार्थ बनाए जाते थे। उनके खाने में घी की प्रचुर मात्रा दिखाई देती है। लेखक लिखते हैं- ''बादशाह के लिए सुबह नाश्ते

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 142
2. डॉ. कृष्णा अवस्थी - वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 14

पर जो दो पराँठे तैयार होते थे उसमें पाँच सेर घी लगता था।"[1] उक्त कथन से मुगलों के ऊँचे दर्जे के भोजन का अंदाजा आता है। इसी कारण ही आज भी ऊँचे दर्जे के खादयुक्त भोजन को 'मोगलाई खाना' नाम से जाना जाता है।

कुछ लोग सादगीपूर्ण जीवन पसंद करते हैं। कथा-नायक के वारिस सैयद इकरामुद्दीन मुगल फौज में सिपाही थे। लड़ाई में उनकी वीरता एक मिसाल बन गई थी। वह धार्मिक वृत्ति और साधा खाना-खाने में आस्था रखते थे। उनके खान-पान के बारे में लेखक लिखते हैं- "जौ की रोटी और पानी उनकी खूराक थी।"[2] स्पष्ट है कि प्राचीन काल में कुछ लोग खान-पान को उतना ही महत्त्व देते थे जितना मिलना चाहिए। खान-पान उनकी दृष्टि से सिर्फ साधनमात्र था, साध्य नहीं, किंतु स्वातंत्र्योत्तर काल में एक ऐसा वर्ग निर्माण हुआ जिन्हें विरासत में जायदाद मिली थी। उनकी मौज करने और अच्छा खाना खाने में ही दिलचस्पी दिखाई देती है। कथा-नायक के नानाजी का कथन दृष्टव्य है- "नाना खाने के शौकीन थे और अच्छा खाना खाने के लिए जमीनें, मकानात और दुकाने बेच डालते थे।"[3] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि नाना खाने के शौक की पूर्ति के लिए परंपरा से मिली हुई सांस्कृतिक विरासत को मिट्टी में मिला रहे हैं। खान-पान ही उनका अंतिम साध्य बन गया परिलक्षित होता है।

सभी जगह पर शराब, अफीम, भांग आदि नशीले पदार्थों का सेवन दिखाई देता है। सामंत युग में हुक्का और चिलम का प्रचलन था लेकिन आज यह परंपरा लुप्त होकर उनका स्थान सिगार और बीड़ी ने ले लिया है। जहाँगीर के शासनकाल के बाद तंबाकू का प्रचार बहुत अधिक हो गया जो आज तक अबाधित रूप में शुरू है। धार्मिक निषेध होने पर भी उच्च श्रेणी के बहुत से लोग शराब पीते हैं। इतिहास गवाह है कि बहुत से मुगल बादशाह शराब के नशे में मर गए हैं। बादशाह गाजीउद्दीन हैदर को भी शराब के नशे से महीनों होश न आता था। उनकी शराब के कारण हुई हालत का चित्रण दृष्टव्य है- "बेतहाशा शराब पीने की वजह से बादशाह के जिगर पर वरम आ गया था। शाही हकीम कहते थे कि शराब उनके लिए जहर है।"[4] अतः स्पष्ट है कि शराब

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 131
2. वही, पृ. 52
3. वही, पृ. 147
4. वही, पृ. 121

और अन्य प्रकार का नशा-पान करना परंपरा से चलता आया है और दुर्भाग्यवश यह परंपरा आज भी खंड़ित नहीं हुई है।

हिंदू धर्म में गोवध निषिद्‌ध माना जाता है। मुसलमान गाय का मांस खाते हैं किंतु हिंदुओं में गोमांस भक्षण करना सबसे बड़ा पाप माना जाता है। खान-पान में भोगवादी प्रवृत्ति का प्रवेश हो रहा है। परिणामस्वरूप धार्मिक नीति-नियमों पर भी आघात हो रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में डिप्टी साहब हिंदू हैं जो मुश्ताक के हाथों पकाया हुआ गाय का मांस खाते हैं। मुश्ताक का कथन दृष्टव्य है- ''भइया बात ये थी कि गोश्त होता था गाय का। डिप्टी साहब थे हिंदू। मैं उन्हें गाय का गोश्त कैसे खिला देता। लेकिन डिप्टी साहब तरंग में कहते थे, लाओ कुछ नहीं होता। मैं भइया वहीं चारपाई डाल देता था और डिप्टी साहब भुना हुआ बढ़िया गोश्त और गर्मागरम रोटी खाते थे।''[1] उपर्युक्त उद्‌धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि खान-पान में संयम के अभाव में लोगों ने धर्म, संस्कृति, मूल्य, समाज के नीति-नियम सभी को तिलांजलि दी है। खान-पान में सांस्कृतिक मूल्य ढहकर सिर्फ भोगवादी प्रवृत्तियाँ पनपती हुई दृष्टिगोचर हो रही हैं।

5.1.5 वस्त्रालंकार -

'सात आसमान' उपन्यास में उपन्यासकार ने मुस्लिम वर्ग के वस्त्र तथा अलंकारों का विवेचन किया है। मुसलमानों में वर्ग के अनुसार पेहराव में विविधता नजर आती है। उच्च श्रेणी के लोग अंगरखा और चूड़ीदार पाजामा पहना करते हैं। कुछ लोग कंधे पर दूपट्टा भी डालते हैं। निर्धन मुसलमान पाजामा, लंबा कुर्ता पहनते हैं। मुसलमान स्त्रियाँ पाजामा या घागरा और जाकिट तथा दूपट्टे से सिर को ढक लेती है। मोजे नहीं पहने जाते पर जूते अवश्य पहने जाते हैं। उच्च वर्ग के कुछ लोग अलग ढंग के वस्त्र पहनते हुए नजर आते हैं- ''अब्बा मियाँ बड़े पायचे का पाजामा और मलमल का कुर्ता पहनते थे। जूता हमेशा नागरा पहनते थे। बाहर जाने से पहले शेरवानी और टोपी पहनते थे।''[2] स्पष्ट है कि अब्बा मियाँ के वस्त्रों से उनकी अमीरी का पता चलता है। उच्चवर्गीय जाड़ों के दिनों में गरम शेरवानी और सर्दियों के दिनों में सूती शेरवानी पहनते हैं। कुछ खानदानी लोग देहाती और शहरी पहनावा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। कथा-

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 19
2. वही, पृ. 31

नायक के वारिस रजी हुसैन खाँ के वेशभूषा के बारे में लेखक लिखते हैं- "रजी हुसैन खाँ पहनावे और रहन-सहन में ही नहीं पूरे मिजाज में अवध के देहाती और शहराती मेलजोल की एक मिसाल थे। घर में मलमल की हल्की धोती बाँधते थे। लेकिन जब बाहर निकलते थे तो छः कली का अँगरखा पहनते थे।"[1] स्पष्ट है कि रजी हुसैन खाँ की वेशभूषा उनके सादगीपूर्ण जीवन की द्योतक थी जिससे उनकी समाज में इज्जत होती थी।

अंग्रेजों के काल में पाश्चात्य वेशभूषा का प्रभाव पड़ने लगा था। बड़े आगा विलायती सूट ही पहनने लायक समझने लगे तो नाना 'सोलो हैट' पहनने लगे थे। लक्खू मियाँ एक विलायती लड़की के प्यार में फँस गए थे परिणामस्वरूप वह अंग्रेजी ढंग के कपड़ों के प्रति आकर्षित होते हुए दिखाई देते हैं। लक्खू मियाँ की वेशभूषा के बारे में लेखक लिखते हैं- "पहनावा अंग्रेजी पसंद करते थे और दिल्ली के 'न्यू फैशन्स टेलर्स' के यहाँ से सिले सूट पहना करते थे।"[2] अतः कहना सही होगा कि अंग्रेजकाल में लोग अंग्रेजों की फैशन से प्रभावित हुए और उसका अनुकरण करने लगे जिससे परंपरागत वेशभूषा में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा।

उपन्यास में मुसलमान स्त्रियों की वेशभूषा का वर्णन संकेत रूप में हुआ है। कथा-नायक के घर में काम करनेवाली मुन्नीबाजी की वेशभूषा का चित्रण दृष्टव्य है- "मुन्नीबाजी हमेशा सफेद या काले कपड़े पहनती थी। सफेद बड़ा दुपट्टा सिर से ओढ़ती थी और अक्सर लकड़ी की खड़ाऊँ पहनती थीं।"[3] अतः उक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भी कुछ सालों तक मुसलमान स्त्रियों की वेशभूषा में कोई फर्क नहीं पड़ा। आज पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के परिणामस्वरूप स्त्रियों की वेशभूषा में कुछ हद तक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

स्त्रियाँ सोने के साथ-साथ हीरे और मोतियों के गहनों की शौकिन नजर आती हैं। पुरुष भी अपनी उच्चता दिखाने के लिए गले में मोतियों की मालाएँ पहनते हुए परिलक्षित होते हैं। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व मुगल बादशाहों के खजाने में अच्छे-अच्छे जवाहरात होते थे। एक

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 64
2. वही, पृ. 84
3. वही, पृ. 29

खजाने का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं - ''उस खजाने में पूरे दरखत हीरे-जवाहरात के खड़े थे। हीरों के ढेर लगे थे। याकूत और मोतियों के अंबार थे। पूरा खजाना जगमगा रहा था।''[1] उक्त उद्धरण से बादशाहों के खजानों की कल्पना आ सकती है। बादशाहों के तख्त सोने के बनाए जाते थे। उसे जमर्रूद, याकूत, फीरोजा, पुखराज मोती और मूँगे लगाकर छत्र बनाए जाते थे। बादशाह हर साल तीन-चार करोड़ के जवाहरात खरीदते थे। बादशाह ही नहीं उनके दरबारियों के पत्नियों के पास भी कीमती गहने होते थे। वजीर मौतमुद्दौला के ''बेगमात के पास ऐसे-ऐसे फर्शी गरारे थे जिनकी कीमत लाखों रुपए थी।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से मुगलकालीन बादशाह और दरबारियों के पास सोने, चांदी और आभूषणों की विपुलता दृष्टिगोचर होती है।

अंग्रेजों के शासनकाल में हमारे देश से अंग्रेज सारा सोना लंदन ले गए जिससे हमारी आभूषणों की सांस्कृतिक परंपरा में बहुत बड़ी क्षति हुई। अंग्रेजों की सोने के लुट के बारे में लेखक का एक कथन दृष्टव्य है- ''एक अजीज लंदन गए थे। वहाँ उन्होंने सड़क के किनारे लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों को पड़े देखा। लोगों ने बताया कि ये लकड़ी हिंदोस्तान से यहाँ आई है। इन्हे ताज्जुब हुआ कि लकड़ी के लट्ठे हिंदोस्तान से यहाँ क्यों लाए गए हैं, लंदन में लकड़ी की क्या कमी। खैर साहब, इन्होंने नजर बचाकर लकड़ी के लट्ठों में से एक को खुरचा तो पता चला सोने के लट्ठे हैं, ठोस सोने के।''[3] अतः उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि सोने की चिड़िया कहलानेवाले हमारे देश से अंग्रेज सारा सोना लूटकर ले गए जिससे अलंकार प्रिय भारत में अलंकारों की मात्रा में कमी आई। आज हमें अलंकारों के बारे में अतीत की विपुलता का कथन स्वप्नवत लगता है।

नई पीढ़ी के लोग अपनी ऐयाशी पूरी करने के लिए खानदानी अलंकार बेचने लगे हैं। जत्तन मियाँ ने जिंदगीभर पैसों की कमी महसूस नहीं की थी। किंतु जब उन्हें पैसे कम पड़ते हैं तब वह अपनी खानदानी अँगूठी मिट्टी के मोल बेचकर ऐयाशी करते हैं। मीर तकी के पास भी कीमती हीरे-जवाहरात थे जिन्हें बेच-बेचकर वह रोज होटल में मिठाई खाते हैं। निष्कर्षतः

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 10
2. वही, पृ. 141
3. वही, पृ. 151

अलंकारों की दृष्टि से हमारा इतिहास गौरवमयी है। अंग्रेजों ने इसे धक्का पहुँचाया। आज की भोगवादी प्रवृत्तियाँ इस बची हुई संस्कृति को भी मिटाने में तुली हुई नजर आती हैं।

5.1.6 उपासना या धार्मिक कृत्य -

भारतीय समाज में हर एक धर्म में अपने ईश्वर के प्रति आस्था एवं श्रद्धा का भाव व्यक्त करने की पद्धतियाँ हैं। यह भाव व्यक्त करने के लिए उस धर्म के अनुयायी उपासना या कुछ धार्मिक कृत्य करते हैं। सभी धर्मों में इसे असाधारण महत्त्व होता है। समाज में नीतिमूल्यों की रक्षा हेतु मंदिरों तथा उपासना पद्धतियों का निर्माण होता है। समाज और धर्म में प्रबोधन तथा जागृति लाने के मूल उद्देश्य से ही इनका निर्माण किया जाता है। डॉ. आदिनाथ पाटील के अनुसार- ''मंदिर, ईश्वर, मूर्तियाँ, नामस्मरण यह सभी उपलब्धियाँ समाज प्रबोधन, आत्म प्रबोधन के मुलभूत साधन हैं।''[1] कहना सही होगा कि हर धर्म के मंदिर उस धर्म के ही नहीं बल्कि पूरे समाज की मूल्यवृद्धि एवं उन्नति में सहायक सिद्ध होते हैं। भले ही धर्मों के श्रद्धास्थान अलग-अलग हो पर उनका उद्देश्य समाजहित के साथ-साथ धार्मिक, सांस्कृतिक विकास ही होता है। भारतीय संस्कृति में हर धर्म की उपासना पद्धतियाँ और धार्मिक कृत्य अलग-अलग दृष्टिगोचर होते हैं।

'सात आसमान' उपन्यास में इस्लाम धर्म की उपासना पद्धति का ही चित्रण हुआ है। इस्लाम धर्म में नमाज, रोजा, हज, जकात आदि उपासना पद्धतियाँ एवं धार्मिक कृत्य परिलक्षित होते हैं। नमाज इस्लाम धर्म की पवित्रता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ है। संसार के हर धर्म ने अपने अनुयायियों के लिए कोई-न-कोई प्रार्थना का प्रकार प्रदान किया है। डॉ. अनिल कुमार सोनकर मानते हैं कि ''जिस प्रकार 'आत्मशोधन' के लिए वैदिक परंपरा में 'संध्या', बौद्ध परंपरा में 'उपन्यास', पारसियों में 'खोर देह अवेस्ता', यहूदी और ईसाइयों में 'प्रार्थना' को प्रतिष्ठित किया है, उसी प्रकार इस्लाम धर्म में 'नमाज' का प्रतिपादन किया है।''[2] स्पष्ट है कि हर धर्म की प्रार्थना पद्धतियाँ अलग हैं। हर धर्म के लोग अपनी-अपनी पद्धतियों के अनुसार प्रार्थना करते हैं। लेकिन इस्लाम को नमाज के रूप में सांघिक प्रार्थना करने का अनोखा प्रकार मिला है-

---

1. सं. डॉ. सुभाषचंद्र अक्कोळे - प्रगति आणि जिनविजय, पृ. 12
2. सं. डॉ. मुमुक्षु शांता जैन - 'तुलसी प्रज्ञा', अप्रैल-सितंबर, 2003, पृ. 29

"वास्तव में इस्लाम पहला धर्म है जिसने सामूहिक इबादत (पब्लिक प्रेअर) करने के तरीके से सांस्कृतिक एकता प्रदान की।"[1] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि मस्जिद में इकट्ठा होकर नमाज पढ़ने से लोगों में आपसी मोहब्बत, भाईचारा और एकता का भाव पैदा होता है। उपन्यास में नमाज का चित्रण अनेक जगहों पर दृष्टिगोचर होता है।

मुगलकाल में नवाब आसिफुद्दौला के दरबार में जैनुल आब्दीन खाँ थे जो नमाज का सख्ती से पालन करते थे। नवाब ने एक दिन दरबार में घोषणा करते हुए कहा कि जो कुरान पर हाथ रखकर कसम खाएगा कि उसने एक वक्त की भी नमाज कजा नहीं की है वही नए इमामबाड़े की बुनियाद रखेगा। तब जैनुल आब्दीन खाँ सामने आकर कहते हैं- "हुजूरेआली, बंदे ने जब से होश सँभाला है और नमाज वाजिब हुई है उस वक्त से आज तक एक वक्त की भी नमाज कजा नहीं हुई है।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से प्राचीन काल से नमाज का कट्टरता के साथ पालन किया जाता हुआ परिलक्षित होता है। दिन में पाँच वक्त की नमाज पढ़ना हर मुस्लिम के लिए आवश्यक बात मानी जाती है। मुहम्मद खाँ के बेटे अहमद हुसैन खाँ भी रात-दिन रोजे-नमाज में लगे रहते थे तो रजी हुसैन खाँ भी नमाज पढ़ना कभी न भूले थे। स्त्रियाँ भी नमाज पढ़ती हुई परिलक्षित होती हैं। बत्तन मियाँ कुछ पागल थे, जिनकी एक शरीफ खानदान की अच्छी लड़की के साथ शादी होती है। उस लड़की को जब मालूम हुआ कि उसका पति पागल है तब वह उसके विरोध में कुछ न कहकर उपासना में लग जाती है। लेखक का कथन दृष्टव्य है- "उसने जानमाज बिछाकर दो रकात नमाज पढ़ी और खुदा का शुक्र अदा किया। खुदा की मसलहेत के आगे सिर झुका दिया।"[3] अतः कहना सही होगा कि स्त्रियाँ अपने ऊपर अन्याय होने पर ईश्वर की शरण में जाना पसंद करती हैं।

इस्लाम धर्म में नमाज के साथ-साथ 'रोजा' को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस्लाम धर्म में साल में एक माह रोजा रखा जाता है जिससे मनुष्य के बुद्धि एवं आत्मा की शुद्धि होती है। 'रोजा' फारसी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है व्रत या उपवास।"[4] सूर्योदय से लेकर सुर्यास्त तक कुछ न खाना, पीना, औरत से भोग करने और बूरी बातों से बचते रहने को रोजा कहते हैं।

---

1. Ed. (Un-Known) - The Sprit of Islamic Culture, P. 4
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 54 - 55
3. वही, पृ. 65
4. सं. नवलजी - नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ. 1190

रोजे से मनुष्य में धर्मपरायणता आती है। अध्यात्मिक तथा नैतिक विकास होता है। 'सात आसमान' उपन्यास में रोजे का उल्लेख मिलता है। कथा-नायक के वारिस सैयद इकरामुद्दीन हुमायूँ के दरबार में सिपाही थे। लेखक लिखते हैं- "वो सूफी सिपाही थे। तीन महीने के रोजे रखते थे और रात-दिन यादे-खुदा में डूबे रहते थे।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि प्राचीन काल से मुसलमानों में रोजे रखने की परंपरा है। उस काल के कुछ मुसलमान सिपाही तीन-तीन महिने के रोजे रखते थे जिससे उनकी अध्यात्मिक और शारीरिक संपन्नता में वृद्धि होती थी। परिणामस्वरूप वह मैदान के जंग में अपनी वीरता का परिचय देते थे। आज भी मुसलमान समाज में रोजा रखने की परंपरा अबाधित रूप से शुरू है जिससे उनकी धर्मप्रवणता दिखाई देती है।

उपन्यास में 'हज' का भी चित्रण दृष्टिगोचर होता है। हज का मतलब है ईश्वर के प्रति आस्था प्रकट करने के लिए तीर्थक्षेत्र का दर्शन करना। हज के बारे में डॉ. जमीला आली जाफरी लिखते हैं- "हज ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा, प्रेम, बंदगी और प्रशंसा का द्योतक है।"[2] सुसंपन्न और स्वास्थ्यसंपन्न मुसलमान को हज जाना अनिवार्य माना जाता है। इस्लाम के मक्का और मदिना यह तीर्थक्षेत्र माने जाते हैं जिसका जिंदगी में एक बार दर्शन करने की लालसा हर मुसलमान में होती है। कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ इराक से वापस लौटते वक्त हज करते हुए लौटते हैं। हज के बारे में मुसलमान समाज में कुछ मान्यताएँ भी परिलक्षित होती हैं। माना जाता है कि हज की यात्रा करते वक्त रास्ते में मृत्यु होती है तो उसे मोक्ष प्राप्ति होती है। सैयद इकरामुद्दीन सौ साल की उम्र में हज जाने की इच्छा प्रकट करते हैं- "अपने बेटों से उन्होंने कहा कि वो हज करने जाना चाहते हैं।"[3] उनके बेटे उन्हें जहाज से लेकर जाते हैं, लेकिन रास्ते में ही उनकी मृत्यु होती है। तब दो आदमी उनकी लाश पर कब्जा करते हैं। बेटों ने विरोध करने के बाद वह कहते हैं- "तुम लोगों को खुदा ने मिट्टी से बनाया है। हमें आग से बनाया है। हम तुम्हारे जहाज पर अगर घूँसा ही मार देंगे तो पूरा जहाज समंदर में गर्क हो जाएगा।"[4] उपर्युक्त उद्धरण

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 52
2. डॉ. जमीला आली जाफरी - हिंदी कविता : इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में, पृ. 65
3. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 52
4. वही, पृ. 53

से विदित होता है कि हज को जाते वक्त जिनकी मृत्यु होती है, उन्हें लेने के लिए खुदा अपने बंदों को भेजता है इस तरह की धारणा को शायद उपन्यासकार उद्घाटित करना चाहते हो।

'जकात' मुसलमानों में एक अलग तरह की मान्यता है जिसका चित्रण उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। जकात यह अमीर मुसलमानों पर गरीबों और लाचार लोगों की मदद तथा सहायता के लिए लगाया हुआ टैक्स है। डॉ. विजयदेव झारी लिखते हैं- ''कुरान शरीफ में जकात अर्थात अपनी वार्षिक आय का चालीसवाँ हिस्सा दान में देने को अनिवार्य घोषित किया गया है।''[1] यह धन अच्छे कामों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। गरीब, मुसाफिर, दीन-दुखियों की सहायता करना जकात का उद्देश्य है। उपन्यास में जकात का चित्रण प्रचुर मात्रा में हुआ है। सामंती युग में हुजूर बड़े जमींदार थे। उन्होंने एक गाँव के पूरे लगान को ही जकात के रूप में दिया था। लेखक के अनुसार- ''हुजूर ने मजहबी कामों और खास तौर पर मुहर्रम के खर्चे के लिए एक गाँव वक्फ़ किया था।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि जकात की परंपरा हर बड़े-छोटे में अपने धर्म और समाज के प्रति प्रेम और त्याग की भावना की ज्योत जगाती है।

कुछ लोग मरते वक्त धर्म के प्रति अपने कर्तव्यों के दीप को हमेशा प्रज्वलित रखने के लिए अपने वसीयतनामा में इसकी तजवीज करते हैं। अब्बा मियाँ ने अपने वसीयतनामें में लिखा था- ''आमदनी के एक-बेटे चार हिस्से को मजहबी कामों और गरीब-यतीम लड़कों की मदद करने के लिए सर्फ किया जाए। एक-बटे-बीस मोहर्रम में खर्च किया जाना चाहिए; एक-बटे-चालीस गरीब शिया लड़कों को पढ़ाई पर; एक-बटे-पंद्रह यतीमखाने को जाना चाहिए; एक-बटे-दस अंजुमन वजीफा सादात को जाना चाहिए।''[3] अतः उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि हर अमीर इस तरह की सहायता का हाथ समाज के गरीबों की तरफ बढ़ा दे तो निश्चित रूप से समाज की आर्थिक दशा में एक क्रांति आएगी। आज संसार में अमीर ज्यादा अमीर और गरीब ज्यादा गरीब हो रहा है। ऐसी अवस्था में हर धर्म में जकात जैसी विधियाँ प्रचलित कराई गई तो समाज से गरीबी सही मायने में हट जाएगी।

---

1. डॉ. विजयदेव झारी - हिंदी कहानी में मुस्लिम जीवन और संस्कृति, पृ. 27
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 79
3. वही, पृ. 220

उपन्यास में 'जिहाद' का भी कुछ जगहों पर अस्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस्लाम में धर्म की रक्षा और आत्मरक्षा के लिए किया जानेवाला संघर्ष जिहाद के नाम से जाना जाता है। मुहम्मद साहब को अरब लोगों के विरोध के कारण मक्का छोड़कर मदिना में भागना पड़ा था। तब से उन्होंने अपने धर्म और आत्मरक्षा के लिए लड़ाई करने की आज्ञा दी थी। तभी से सारी लड़ाईयाँ जिहाद के नाम से चलने लगीं, किंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस्लाम में चल रहा जिहाद मुहम्मद साहब के तत्त्वों के विरोधी होने के साथ-साथ दुर्भाग्यपूर्ण है। आज के जिहाद मूल उद्देश्य से हटकर क्रौर्य और डर के बीज बो रहे हैं जिससे मुस्लिम धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों में गिरावट आ रही है।

5.1.7 अंध-विश्वास -

अंध-विश्वास संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति में अंधविश्वास को अक्षुण्ण महत्त्व दिया जाता है। अंधविश्वास पनपने के लिए उसे मिलनेवाला परिवेश आधारभूत होता है। भारत मुख्यतः ग्राम-प्रधान देश है। गाँवों में अज्ञान की मात्रा अधिक होती है। उसी कारण ही गाँव और अंधविश्वास का अटूट रिश्ता बन गया है। विवेकी राय की टिपण्णी दृष्टव्य है- "गाँवों को अंधविश्वासों से काटकर यदि प्रथक कर दिया जाए तो वह गाँव नहीं रह जाता।"[1] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि गाँवों में अंधविश्वास की जड़ें गहरी समाई हुई हैं। दुर्भाग्यवश 21 वीं सदी में भी हम उन्हें समुल उखाड़ नहीं सके हैं। अज्ञान और अदृश्य शक्ति के प्रति आसक्ति के कारण ही विभिन्न जाति-धर्मों में अंधविश्वास दृष्टिगोचर होता है। असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में अंधविश्वास को सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

हमारे समाज में जिन्न पर विश्वास किया जाता है। माना जाता है कि जो काम इन्सान नहीं कर सकता जिन्न अदृश्य रूप में करता है, किंतु जिन्न का उसुल होता है कि उसे कभी गलत काम करने के लिए नहीं कहना चाहिए। मुन्नीबाजी के पिताजी के पास जिन्न था। एक आदमी जिस पर कत्ल का मुकद्दमा चल रहा था उनके पास आकर कहता है कि "अदालत से मेरी फाईल गायब करा दीजिए, मैं बेगुनाह हूँ।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से जिन्न पर गहन विश्वास परिलक्षित होता है। जिन्न के बारे में समाज में कुछ मान्यताएँ भी नजर आती हैं। मुन्नीबाजी के

---

1. विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन, पृ. 271
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 30

पिताजी का कहना था कि "हम इनसान हैं, हमारा इल्म महदूद है। ये लोग जिन्नात हैं। इन्हें सब मालूम रहता है। इसलिए हमें इनको काबू में करने की कोशिश नहीं करना चाहिए।"[1] अतः उपर्युक्त उद्धरण से समाज में जिन्न पर होनेवाले विश्वास को पुष्टि मिलती है। जिन्न के बारे में समाज में जो मान्यताएँ प्रचलित हैं; वह आज भी बरकरार हैं जो अंधविश्वास का द्योतक है। यह अंधविश्वास मानव में श्रम की भावना का विनाश करके समाज को अधःपतन की ओर ले जाता है।

भारतीय संस्कृति में मानव पारिवारिक दुःख या समस्याओं से बचने के लिए प्राचीन काल से तंत्र-मंत्र, जादू-टोने, नीबू-डोरे आदि की सहायता लेता हुआ परिलक्षित होता है। मुगल काल से इसके प्रमाण नजर आते हैं। गाजीउद्दीन हैदर की बेगम को चार-पाँच साल तक कोई बच्चा नहीं होता है। "हजारों दवाएँ, लाखों मन्नतें-मुरादें, टोने-टोटके, दुआ, ताबीज सब कुछ के बाद भी गोद खाली रही।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से यह परिलक्षित होता है कि प्राचीन काल से पुत्र-प्राप्ति की कामना के लिए वह अनेक अनुष्ठान किए जाते हैं। आज भी समाज में यह पद्धति रूढ़ है कि जो काम मानव नहीं कर सकता उस काम के लिए तंत्र-मंत्र की शरण में जाता है। मैंकू की बेटी एक चमार के साथ भाग जाती है। वह उसे अनेक प्रयास करने पर भी ढूँढ़ नहीं पाता। मैकू कहता है- "दुआ, तावीज, जादू-टोना, टोटके सब कराए लेकिन वह न मिली।"[3]

समाज में फकिरों और पंडितों की भविष्यवाणियों को लेकर अंधविश्वास प्रचलित है। कथा-नायक के घर के पास कुँआ खोदने से पहले फकीर को बुलाया जाता है। हुजूर भी बाजार लगवाने से पहले बाजार सफल होगी या नहीं यह देखने के लिए एक पंडित को बुलाते हैं। हुजूर ने बुलाया हुआ पंडित माश के आटे का एक साँप बनाकर उसके साथ अनेक चीजें रखता है, जैसे- "एक मिट्टी की कटोरी में कड़वा तेल, शेर की हड्डी का टुकड़ा, सिंदूर और पता नहीं क्या-क्या।"[4] चीजें रखने के बाद वह जाप करता है। उसका कहना है कि माश के दाने फेंकने के बाद उस मृत साँप के मुँह से ताजा खून निकलेगा- "साँतवा दाना फेंकते ही साँप के मुँह से ताजा खून

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 30
2. वही, पृ. 128
3. वही, पृ. 180
4. वही, पृ. 68

निकल आएगा। यह सबूत होगा कि बाजार चलेगी।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से परिलक्षित होता है कि किसी कार्य को आरंभ करने से पहले पंडितों के द्वारा बताए शुभ-अशुभ संकेतों पर विश्वास किया जाता है। यह बात अलग है कि पंडित आदि लोग अपनी हाथ-चालाखी के माध्यम से सामान्य लोगों को आसानी से फँसाते हैं किंतु आम आदमी इसे पंडितों का पांडित्य और देवी शक्ति का प्रसाद मानते हैं।

उपन्यासकार ने सच्चाई को उजागर करने का प्रयास किया है। नाना बुढ़ापे में आर्थिक और पेट भरने की लाचारी से तंग आकर गले में फूलों की मालाएँ डालकर फकीर के रूप में एक बाग में बैठते हैं। लोग उनके पास अपनी समस्याएँ लेकर आने लगे और नाना जो मन में आए उन्हें दुआ देने लगे। कुछ दिनों बाद ज्यादा ही लोग आने लगे- ''किसी की मुराद पूरी हो जाती थी तो वह मिठाई लेकर आता था। कोई फूल लाता था। कोई अगरबत्तियाँ देता था।''[2] निष्कर्षतः कहना सही होगा कि मनुष्य को समस्याओं के निराकरण के लिए किसी मानसिक आधार की आवश्यकता होती है। उन्हीं भावनाओं का पाखंडी लोग फायदा लेते हुए परिलक्षित होते हैं। जादू-टोना करनेवालों और पंडित फकिरों को समाज में प्रतिष्ठा मिलने लगी है किंतु मनुष्य की समस्याएँ जैसी थी वैसी ही हैं। आज शिक्षा के प्रसार के कारण इसमें कुछ मात्रा में गिरावट आई है किंतु उसके समूल उच्चाटन के लिए अधिक प्रभावी परिवर्तन और जागृति की आवश्यकता है।

मुस्लिम समाज में अंधविश्वास के साथ कुछ लोकविश्वास भी प्रचलित है। आम तौर पर शिया मुसलमान अनिश्चय की दशा में एक दुआ पढ़ते हैं और आँखें बंद करके तस्बीह के दाने पकड़ते हैं। दानों की संख्या से निश्चित होता है कि अमूक काम किया जाए या न किया जाय। मुसलमान समाज में द्विधा मनस्थिति में इस्तिखारा देखने की परंपरा है। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के वक्त मुहम्मद खाँ को किला छोड़कर कहीं सुरक्षित जगह पर चले जाए या न जाए दोनों तरफ से उलझन बढ़ रही थी। उस वक्त ''उन्होंने तस्बीह निकालकर इस्तिखारा देखा। किला छोड़कर कहीं महफूज जगह चले जाने पर इस्तिखारा वाजिब आया।''[3] उपर्युक्त उद्धरण से

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 68
2. वही, पृ. 215
3. वही, पृ. 61

मुसलमानों का इस्तिखारा पर अड़िग विश्वास परिलक्षित होता है। कथा-नायक के नानी को भी इस्तिखारा देखने की आदत थी। वह हर छोटे-से-छोटे काम के लिए इस्तिखारा देखती थी। लेखक का कथन दृष्टव्य है- ''दोटे-छोटे काम करने से पहले इस्तिखारा देखती थी। जैसे ये इस्तिखारा देखती थीं कि नाश्ता करूँ या न करूँ। इस्तिखारा नहीं आता था तो नाश्ता नहीं करती थीं। एक दिन न तो नाश्ता करने पर इस्तिखारा आया न खाने पर आया, न खाने पर आया। दिन-भर भूखी रहीं।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से लोक विश्वास पर अतिविश्वास दृष्टिगोचर होता है।

5.2 बदलते मानव का सांस्कृतिक जीवन : विकासजन्य परिवर्तन -

परिवर्तन संस्कृति का नियम है। संस्कृति में परिवर्तन आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना संस्कृति का विकास नहीं होता। उपन्यासकार असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकाल से लेकर अंग्रेजकाल की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर काल में कुछ विकासजन्य परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इस परिवर्तन से हमारी संस्कृति भविष्य में और विकसित हो सकती है। यह सांस्कृतिक विकासजन्य परिवर्तन इस तरह है -

5.2.1 नारी सम्मान -

नारी सम्मान स्वातंत्र्योत्तर कालीन सांस्कृतिक जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। नारी ही संस्कृति की सच्ची रक्षक होती है, किंतु उसे ही स्वातंत्र्यपूर्व काल में भोग का साधन माना गया जिससे संस्कृति का पतन और अनैतिकता का प्रसार होने लगा। मुगलकाल में नारी सम्मान की सबसे बड़ी गिरावट हुई दृष्टिगोचर होती है। उस काल में बहु-बेटियों का अपहरण किया जाता था। यहाँ तक की सुंदरियाँ उपहार के रूप में देने की प्रथा थी। प्रधान पत्नी के साथ-साथ उपपत्नियाँ और सेवा के लिए दासियाँ रखने की प्रथा थी। बादशाहों के हरम उनकी इज्जत समझे जाते थे- ''मांडू के सुलतान नसिरूद्दीन ने पंद्रह हजार बेगमें अपनी हरम में रखने का प्रण किया था और उसे पूरा भी किया था।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से उक्तकालीन नारी की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति परिलक्षित होती है। 'सात आसमान' उपन्यास में गाजीउद्दीन हैदर की भी नारी के प्रति यही दृष्टि परिलक्षित होती है। गाजीउद्दीन हैदर के हरम में भी अनेक स्त्रियों की

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 149
2. सुंदरलाल - अकबर की मृत्यु के समय का भारत, पृ. 263

भरमार रहती थी। उनके साथ किए जानेवाले व्यवहार से लगता था कि वह स्त्रियाँ नहीं बेजुबान, बेजान भेड़-बकरियाँ हैं। उनकी सुरक्षितता के लिए उन पर खोजे, हिजड़े, खवासनियों का पहरा लगा दिया जाता था। अतः स्पष्ट है कि मुगलकालीन नारी को भोग का साधन के रूप में इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति ने हमारी संस्कृति को कमजोर बनाया।

समय बदलता गया लेकिन सामंती युग तक आते-आते नारी की स्थिति में कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। सामंती काल में घर की चार दीवारें ही नारी की नियति बन गए थे। स्त्री पर रूढ़ि-परंपराओं के ऐसे कड़े बंधन डाले गए कि घर से बाहर निकलना अनुचित माना जाने लगा। शादी से पहले अपने पिता के घर और शादी के बाद अपने पति के घर की मान-मर्यादा और सीमाओं का पालन करना आवश्यक माना जाने लगा। वहाँ पर उसकी आशा-आकांक्षाएँ और सपने कोई मायने नहीं रखते थे। हुजूर बड़े खानदानी जमींदार हैं और रईस होने के कारण वह अपने पागल बेटे की शादी एक शरीफ खानदान की अच्छी से करते हैं- "ब्याहकर जो बहू आई उसे जल्दी ही पता चल गया कि उसका मियाँ दीवाना है। बहू ने उफ तक न की। न तो उसने ये बात अपने घरवालों को बताई और न अपने ससुरालवालों पर कोई इल्जाम धरा।"[1] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि मुगलकाल की तुलना में सामंती काल में नारी को परिवार में स्थान तो मिला किंतु उसे अनेक बंधनों में बाँध दिया गया। नारी में अपने परिवार, समाज और धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन करने या उसके विरोध में विद्रोह करने की हिम्मत नहीं थी। इसी के परिणामस्वरूप पुरुष-प्रधान संस्कृति सदैव विकासमान रही।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी में कुछ मात्रा में चेतना उजागर हुई परिलक्षित होती है। इसके लिए उसे अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ा, किंतु वह नैतिक मूल्यों और आदर्शों के प्रति तत्पर दिखाई देती है। डॉ. राधेश्याम तिवारी का कथन दृष्टव्य है- "सामान्यतः जो सामाजिक व्यवस्था है उसमें महिलाओं को कई स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। उनका संघर्ष इसलिए भी अधिक कठिन है क्योंकि नैतिकता और मर्यादाओं का सारा दायित्व उन्हीं पर लाद दिया गया है।"[2]

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 64
2. सं. गिरधर राठी - 'समकालीन भारतीय साहित्य', द्विमासिक पत्रिका, मई-जून, 2003, अंक-107, पृ. 153

स्पष्ट है कि नैतिक मूल्यों का पालन करना स्त्री का धर्म माना जाता है। उसके कारण उसके संघर्ष में मर्यादा आती है। लेकिन स्त्री ने अपने धर्म को नहीं छोड़ा है।

स्वातंत्र्योत्तरकालीन नारी चेतना में समाज-सुधारकों एवं शिक्षा के प्रसार का महत्त्वपूर्ण सहभाग रहा है। शिक्षा के प्रसार के कारण नारी परिवार की अच्छाई-बुराई की ओर ध्यान देने लगी। अम्माँ अपने पति के साथ मिलकर घर के फैसले करने लगी है। कथा-नायक के दादाजी जिंदगीभर के आदतों के कारण रुपए खूब खर्च करते थे। इसलिए अम्माँ अब्बा से अपने हिस्से की आमदनी की मांग करने के लिए उन्हें प्रेरित करती है। अम्माँ कहती है- "अगर हमको आमदनी में हिस्सा मिलने लगे तो हम कुछ बचा भी सकते हैं। लेकिन इस तरह तो कुछ न होगा।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से नारी में परिवार के हित में खुद निर्णय लेने की तत्परता का उदय हुआ दृष्टिगोचर होता है। अम्मा अपने बच्चों की परवरीश और शिक्षा के प्रति जागृत है। अब्बा भी अम्माँ के हाथ में आमदनी देने लगे थे क्योंकि अम्माँ पैसों का अच्छी तरह से इस्तमाल करती थी। अम्माँ अब्बा को अनेक योजनाओं और खेती के प्रगती के बारे में सलाह देती थी। अम्माँ ही उन्हें सड़क के किनारे जो खाली जमींन है उस पर दुकानें और मकान बनवाने की राय देती है- "एक तरह से हर मामले में अब्बा अम्माँ के ऊपर आश्रित थे। ये कहना ठीक होगा कि वही उनका दिमाग थीं।"[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी पारिवारिक स्तर पर सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करते हुए परिवार का विकास कर रही है।

परिवार में ही नहीं बाहर भी नारी अपने पैरों पर खड़े रहने की कोशिश कर रही है। कथा-नायक की नानी अपने पति के न होते हुए भी अपने जीवनयापन के लिए अपने नीतिमूल्यों को बरकरार रखते हुए पैसें कमाने के अनेक मार्ग अपनाती है- "जैसे बड़ी कंपनियों में हिस्से खरीदती थीं। बचत योजनाओं में बड़ा ब्याज मिलता था। उसमें पैसा लगाती थी।"[3] अतः स्पष्ट है कि नारी समाज का हिस्सा बन गई है। परंपरा से शोषित जिस नारी को समाज और धर्म के झूठे और आडंबरपूर्ण खोखले संस्कारों के सिकंजों से निकलने के लिए सदियाँ बीत गई उसी नारी ने आज हर क्षेत्र में क्रांति की है। कथा-नायक की पत्नी पढ़कर अच्छी नौकरी करने लगी है। कथा-नायक

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 156
2. वही, पृ. 183
3. वही, पृ. 149

जब नौकरी के लिए यूरोप जाना चाहते हैं तब वह अपनी पत्नी को भी ले जाना चाहते हैं। उनके अनुसार- "पत्नी एक एडवांस डिप्लोमा करना चाहती है, वह भी हो जाएगा।"[1] निष्कर्षतः कहना सही होगा कि नारी आज मुक्त हवा में साँस लेती हुई परिलक्षित होती है। उसने खुले आकाश में अपने पंख फैलाने शुरू किए हैं। उसके इस प्रवास में नारी को अनेक मुसिबतों का सामना करना पड़ा है किंतु वह अपने परंपरागत सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों के प्रति वफादार रही है। उसके इस सारे सफर में पावित्र्य और मांगल्य की छटा दृष्टिगोचर होती है जो भविष्य के सांस्कृतिक धरोहर की नींव बन जाएगी।

5.2.2 मानवता की प्रतिष्ठापना -

भारतीय समाज-जीवन में मानवता को मनुष्य की उदात्त प्रवृत्ति माना जाता है। 'भाषा शब्दकोश' में मानवता की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है- "मानवता- (सं. स्त्री) मनुष्यता, पशु के स्तर पर से ऊपर उठा हुआ त्यागमय भाव।"[2] उक्त व्युत्पत्तिपरक उद्धरण से विदित होता है कि मानवता मानवेतर प्राणियों से ऊपर उठा हुआ भाव है। इसी गुण के आधार पर ही मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। मानवता में सद्विचार और सदाचार के साथ-साथ सुसंस्कारिता का अनन्य महत्त्व है। इसलिए डॉ. विजयेंद्र स्नातक लिखते हैं- "मानवतावाद में विश्वास करनेवाला व्यक्ति ही यथार्थ में सभ्य एवं सुसंस्कृत पुरुष है।"[3] स्पष्ट है कि सभ्य और सुसंस्कृत का संबंध संस्कारों से है और संस्कारों का संबंध संस्कृति से है। संस्कृति के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण सहृदयता, समता, सामंजस्य, दान, दया, करूणा, सच्चरित्रता, संयम, त्याग आदि का मानवता में समावेश होता है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में मानवता का क्षेत्र सर्वाधित प्रभावित करने का श्रेय राजा राममोहन राय, विवेकानंद एवं दयानंद सरस्वती को प्राप्त है। किंतु उन्हें उसमें आंशिक सफलता मिली। वर्तमान समाज में मनुष्य मानवता के जगह पर क्रौर्य और डर का साम्राज्य निर्माण कर रहा है। आज मनुष्य पशु से भी हीन नजर आ रहा है, जहाँ से उसे वापस लौटना होगा। अमानवीय कृत्यों का विरोध करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं- "बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 251
2. सं. डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' - भाषा शब्दकोश, पृ. 1246
3. कन्हैयालाल नंदन - 'गगनांचल', त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई-सितंबर, 1998, पृ. 41

का बढ़ते देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उसकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास बिना सिखाए आती है वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयम रखना, दूसरों के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है।''[1] असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में मानवता के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है।

भारत पर जिसने भी शासन किया चाहे वह मुगल हो या अंग्रेज सत्ता की लालसा और संपत्ति की चाह ही उनका परम उद्देश्य था। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए मानवता का गला घोट दिया हुआ परिलक्षित होता है। 'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकालीन दरबारी मानवताहीन राजनीति का चित्रण मिलता है। मुगल बादशाह गाजीउद्दीन हैदर रंग-रंगेलियों में मस्त थे। उनके नवाब मौतमुद्दौला शासन के सुत्रधार बने थे। उनके आरमान और सपने आसमान को छू लेते थे। सभी जानते थे कि उनके रास्ते में आनेवाले किसी को भी वह कोई भी साजिश करके फाँसी दे सकते हैं। लेखक का कथन दृष्टव्य है- ''साजिशे रचना मौतमुद्दौला के बाए हाथ का खेल है।''[2] अतः मुगलकालीन उच्च वर्ग दरबार में अपनी हैसियत बढ़ाने के लिए एक-दूसरे का खून करने पर उतारू हो गए थे। आम इंसान उनकी नजर में मानव नहीं था। कहना गलत न होगा कि मुगलकालीन उच्च वर्ग में ऐयाशी, सत्ता, इज्जत की चाह और स्वार्थी आशा-आकांक्षाओं के बीच मानवता कहीं दुबकी पड़ी हुई दृष्टिगोचर होती है।

अंग्रेजों के शासनकाल में तो अंग्रेजों ने 'फोड़ो-झोड़ो और राज करो' की नीति को अपनाया। 1857 की राजक्रांति के बदलेस्वरूप अंग्रेजों ने किए हुए मानवता के संहार के चित्रण से आज भी भारतियों की रूह काँप उठती है। बागियों ने विद्रोह तो किया लेकिन अंग्रेजों का भय उनके दिल से नहीं निकला था। कुछ ही दिनों में अंग्रेजों ने बावन लोगों को फाँसी पर लटकाकर शहरों को चारों तरफ से जला दिया- ''खुसरू बाग में भी बागियों को फाँसी पर लटकाकर शहर में कत्लेआम किया।''[3] उपर्युक्त कथन से अंग्रेजों के जमाने में मानव के साथ अमानवीय अत्याचार हुए परिलक्षित होते हैं। भारत-पाकिस्तान विभाजन के वक्त तो मानव ने अमानवीयता का ऐसा नंगा-

1. सं. मुकुंद द्विवेदी - हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड- 9, पृ. 357
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 114
3. वही, पृ. 60

नाच और घिनौना रूप देखा कि परंपरा से समृद्ध और विश्व में सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति को शर्म से झुकना पड़ा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय जनमानस मानवता के लिए तरसने लगा था। मानवता व्यक्ति के संस्कार और सदाचार से झलकती है। अतः मनुष्य ने स्वयं अपने परिवार से ही मानवता के परिष्करण की शुरूआत करनी होगी। क्योंकि व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र एक-दूसरे से संबंधित हैं और प्रभावित भी। 'सात आसमान' उपन्यास में उपन्यासकार ने एक व्यक्ति के सीमित घेरे के अंदर परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति मानवतावादी व्यवहार का यथार्थ चित्रण किया है। कथा-नायक के दादा अब्बा मियाँ बड़े जमींदार होने के साथ-साथ मानवता के पुजारी थे। मुसलमान होते हुए भी उनके देशप्रेम पर कोई शक नहीं कर सकता था। व्यावहारिक धरातल पर उन्होंने मानवता का विकास किया हुआ परिलक्षित होता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में जमींदारी खत्म होने के बाद सभी बड़े जमींदार किसानों को बेदखल करके जमींन के पट्टे अपने या रिश्तेदारों के नाम कर रहे थे। किंतु अब्बा-मियाँ ने इस बात से इन्कार करते हुए कहा कि "जनाब, मैं उन किसानों को बेदखल नहीं कर सकता जो जमीनें जोत रहे हैं। हाँ, जो जमीनें खाली हैं उनका मैं पट्टा कर सकता हूँ। उन्हें लाख-लाख समझाया गया कि देखिए, सब ऐसा कर रहे हैं। लेकिन उन्होंने कहा कि मैं किसी की 'आह' नहीं ले सकता।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से अब्बा मियाँ के दरियादिली और इन्सानियत का परिचय मिलता है।

मानवजाती चाहे वह उच्च हो या नीच उनके प्रति अच्छा व्यवहार करना मानवता ही है। अब्बा मियाँ अपने नौकरों और अपनी संतान में कोई फर्क नहीं करते थे। उनका सख्त आदेश था कि "कोई भी नौकर जब सो रहा हो तो उसे न उठाया जाए।"[2] वह अपने नौकरों की छोटी-मोटी गलतियों को नजरअंदाज कर देते थे। नौकरों के खाने-पीने का भी खास ध्यान रखते थे। नौकरों के प्रति हमदर्दी के बारे में लेखक का कथन दृष्टव्य है- "ईद-बकरीद में अपने लिए नए कपड़े नहीं बनवाते थे लेकिन नौकरों के लिए नए कपड़े जरूर बनते थे।"[3] उपर्युक्त उद्धरण से

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 153
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 167

अब्बा मियाँ की नौकरों के प्रति मानवतावादी दृष्टि दिखाई देती है। वह उच-नीच के भेद को मिटाना ही मानवता का प्रमुख लक्षण मानते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

अब्बा मियाँ में कुँवारी माँ, अपराधी तथा रखैल पुत्री आदि उपेक्षितों के प्रति सहानुभूतिभाव रखकर उन्हें पनाह देने का मानवतावादी अंश दृष्टिगोचर होता है। घर में काम करनेवाली "एक कुँवारी मामा अजीमन बुआ को हमल रह गया। उससे बहुत पूछा-गछा गया कि यह किसका है लेकिन उसने नहीं बताया। खैर हमल गिरवा दिया गया और सबको ये फिक्र हुई कि अजीमन बुआ की शादी अब कहाँ होगी ?"[1] उस वक्त अब्बा मियाँ उसकी शादी अपने मुंशी अब्बू साब के साथ कराते हैं। मैकु नाम के एक डाकू को जमीन का कारिंदा बनाते हैं तथा अपने भाई की रखैल की बेटी जुबैदा को अपनाने का समाजविरोधी धैर्य उन्हें सही समाजनिष्ठ घोषित करता है। अब्बा मियाँ मरते वक्त अपने वसीयतनामें में गरीब, यतीम लोगों के लिए प्रबंध करते हैं। अतः निष्कर्षतः कहना सही होगा कि मानवता का प्रारंभ व्यक्ति से होता है। स्वातंत्र्यपूर्व काल की हिंस्र अमानवीयता की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर काल में वैयक्तिक स्तर पर ही सही मानवता की ज्योत जल उठी है। एक ज्योति से दूसरी ज्योति जल उठने का आशावाद ही भारतीय संस्कृति की नींव को मजबूत करेगा।

5.2.3 रखैल प्रथा निर्मूलन -

सामंतवादी मनोवृत्ति के कारण पुरुष-प्रधान संस्कृति तथा नारी को भोग की वस्तु के रूप में रखने की परिपाठी रही है। इसी मनोवृत्ति का एक रूप रखैल प्रथा रही है। असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में स्वातंत्र्यपूर्व रखैल प्रथा का यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर होता है।

कथानायक के वारिस अहमद हुसैन खाँ बहुत बड़ी जागीर के मालिक थे। पैसों की विपुलता के कारण ऐयाशी करते थे और बाहर की औरतों पर खर्च करते थे- "उन्होंने एक डोमनी को डाल लिया था और उसके खानदान पर खूब पैसा खर्च करते थे।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से रखैल प्रथा का महत्त्वपूर्ण कारण संपत्ति की विपुलता ही परिलक्षित होता है। जत्तन मियाँ भी अपनी

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 9
2. वही, पृ. 62

पत्नी के होते हुए भी सत्ती नामक रखैल रखते हैं, जिससे पारिवारिक संबंधों में बिखराव और अनास्था निर्माण हो जाती है। जत्तन मियाँ की तरह अब्बा मियाँ की भी एक रखैल थी, लेकिन वह अपने बड़े भाई की तरह उसमें डूबे हुए नहीं थे। नाना ने भी अपनी पत्नी ज्यादा दिन मैके में रहने के कारण एक रखैल को रखा था। अतः स्पष्ट है कि सामंतीयुग में रखैल रखना सर्वसाधारण बात हो गई थी। यह प्रथा भारत स्वतंत्र होने तक रही। स्वाधीनता के बाद जमींदारी खत्म हो गई और जमींदार ढिले पड़ गए। अतः निष्कर्षतः कहना सही होगा कि विश्व की सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति में रखैल प्रथा बहुत बड़ी रूकावट थी जो स्वाधीन भारत के साथ-साथ खत्म हुई परिलक्षित होती है। रखैल प्रथा के निर्मूलन से पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर विकास दृष्टिगोचर होता है। रखैल प्रथा का निर्मूलन यह भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल भविष्य की सूचक है।

5.2.4 आयुर्वेद के महत्त्व की वापसी -

आयुर्वेद प्राचीन ऋषि-मुनियों द्‌वारा भारतवर्ष की संस्कृति को मिली हुई बहुत बड़ी देन है। वैदिक शास्त्र के अनुसार आयुर्वेद प्रकृति का सबसे बड़ा वरदान है। प्राचीन लोगों की शारीरिक संपदा देसी दवाओं याने आयुर्वेद पर आधारित थी। जैसे-जैसे भारत पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा लोग अपने संस्कृति से भटक गए। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखेंगे तो भारतीय भटककर फिर अपनी आयुर्वेद (देसी दवाओं) की संस्कृति की जड़ों की ओर लौट रहा हुआ परिलक्षित होता है। डॉ. हरिमोहन मालवीय के अनुसार ''अब तो वैज्ञानिकों का एक विशेष वर्ग प्राचीन भारत के वैज्ञानिक विकास को समझने की दृष्टि से जिज्ञासु हुआ है। विश्व के अनेक देशों में भारतीय आयुर्विज्ञान के सहारे चरक तथा सुश्रुत आदि की रसायन परंपरा और पद्‌धति पर अनुसंधान हो रहे हैं। आयुर्वेद की महत्ती उपलब्धियों से कुछ देश लाभान्वित भी हुए हैं।''[1] उपर्युक्त उद्‌धरण के आधार पर कहना सही होगा कि मानव को भौतिकवादी दुनिया से निकलकर फिर से प्रकृति की ओर जाना होगा।

'सात आसमान' उपन्यास में आयुर्वेद के बारे में भी कुछ मात्रा में विवेचन हुआ है। कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ की उम्र सत्तर साल हो गई थी। बीमार होने के बाद डॉ. सेन जो उन्हीं के उम्र के थे उनसे देसी दवाएँ लेते थे। उनके अलावा किसी और की दवाएँ न लेते थे।

---

1. सं. हरिमोहन मालवीय - 'हिंदुस्तानी' त्रैमासिक, जुलाई -सितंबर, 2003, पृ. 5

घर में भी आम तौर पर इलाज नहीं कराते थे- ''देसी दवाओं का इस्तमाल अपने-आप करते थे। खास तौर पर खाना खाने के बाद किसी तरह का चूरन खाया करते थे।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से अब्बा मियाँ की आयुर्वेद के प्रति आस्था परिलक्षित होती है।

5.2.5 बहु-विवाह प्रथा में परिवर्तन -

एक पुरुष का अनेक स्त्रियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना ही बहुविवाह कहलाता है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन में प्राचीन काल से यह कुप्रथा प्रचलित है। वैदिक काल से लेकर रामायण काल तक सभी उच्चवर्गियों में बहुविवाह पद्धति रूढ़ थी। मुगलकाल में बहु-विवाह प्रथा ने अपनी सीमाओं को तोड़ दिया। मुगल बादशाहों में पत्नी के साथ-साथ हजारों उपपत्नियों से हरम भरे रहते थे। स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी में जागृति और समाज-सुधारकों के फलस्वरूप बहु-विवाह प्रथा में गिरावट आई है। बहु-विवाह प्रथा कानून द्वारा बंद की है। लेकिन इस्लाम धर्म में अभी तक इस तरह का कोई कानून पारित नहीं हुआ है। फिर भी वैज्ञानिक प्रगति और शिक्षा प्रसार के कारण इस्लाम धर्म में भी प्रचुर मात्रा में बहु-विवाह प्रथा नियंत्रित हो रही है।

'सात आसमान' उपन्यास में मुगलकालीन बहु-विवाह प्रथा का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। बहु-विवाह प्रथा भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी रूकावट थी। उस काल के बादशाहों को शादी करना खेल माना जाता था। अकबर के दरबार में दरबार की आपसी दुश्मनी का बदला लेने के लिए अनेक शादियाँ की हुई परिलक्षित होती हैं- ''एक अमीर की बेटी से युवा बादशाह यानी अकबर की शादी बड़ी धूमधाम से करा दी गई। अब शाही हरम भी दरबारी सियासत में उतर आया था।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना गलत न होगा कि उस काल की विवाह पद्धति को कोई धार्मिक अधिष्ठान नहीं था। बादशाह गाजीउद्दीन हैदर ने भी अनेक शादियाँ की हुई परिलक्षित होता है।

शासन में प्रधान बेगम की संतान ही सल्तनत की वारिस समझी जाती थी। गाजीउद्दीन हैदर की प्रधान बेगम को कोई संतान नहीं होती। तब बादशाह की उपपत्नी सुबह दौलत को संतान होती है। लेकिन यह प्रधान बेगम को अपना बहुत बड़ा अपमान लगता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 30
2. वही, पृ. 53

परिणामस्वरूप सुबह दौलत को मार दिया जाता है। स्पष्ट है कि बहु-विवाह में भोग ही एकमात्र उद्देश्य था। स्त्री को अपने संतान सुख का अधिकार नहीं था। यह हमारी संस्कृति की सबसे बड़ी विड़ंबना थी।

स्वातंत्र्योत्तर काल में बहु-विवाह प्रथा में बहुत परिवर्तन हुआ परिलक्षित होता है। अब्बा मियाँ अपनी पत्नी के मृत्यु के बाद भी दूसरी शादी नहीं करते हैं। उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तरकालीन बहु-विवाह पद्धति का चित्रण कहीं नहीं मिलता है।

5.2.6 पशु-प्रेम -

प्रकृति मनुष्य को विरासत में मिली है और पशु-पक्षी प्रकृति के द्वारा मनुष्य को मिले हुए सांस्कृतिक अंग है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पशुओं का पुजन किया जाता है। समाज में यह धारणा है कि पशु-पक्षी ईश्वर के अंश हैं। के. आर. भारती का कथन विचारणीय है- ''भारतीय मान्यता उस प्रकृति पर आधारित है जिसमें पेड़-पौधों, पशु-पक्षिओं; यहाँ तक की जल, थल और आकाश में विचरण करनेवाले जीवों तक को ईश्वर का अंश मानकर उसकी पूजा की जाती है।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से विदित होता है कि पशु-पक्षियों की पूजा और आराधना भारतीय संस्कृति में की जाती है जो विश्व में कहीं नहीं मिलती।

'सात आसमान' उपन्यास में उपन्यासकार ने पशुओं के प्रति प्यार का यथार्थ चित्रण किया हुआ परिलक्षित होता है। कथा-नायक के घर में मीर तकी नामक मुंशी को चिड़ियों को खाना खिलाने का शौक था। एक ठिक समय पर रोज अँगन में रोटी के टुकड़े रखने की उनकी आदत थी। गर्मियों के दिनों में तो वह हँड़ियों में पानी भरकर रखते थे। उनकी मौत हो जाने के बाद उनका जनाजा बाहर बरामदे में रखा जाता है- ''अचानक गौरैयों का जत्था आया और उस पर बैठ गया। उसके बाद तो ताँता लग गया। उनकी मय्यत गौरैयों से ढक गई।''[2] अतः उपर्युक्त कथन से मानव और पशु-पक्षियों का अटूट संबंध परिलक्षित होता है। गाँव की संस्कृति में तो पशु-पक्षी, जानवर अविभाज्य अंग होते हैं। गाँव के हर आदमी में जानवरों के प्रति प्यार परिलक्षित होता है। अब्बा मियाँ जमींदार थे और जानवरों का घर में होना आवश्यक मानते थे- ''उनका कहना था कि

---

1. सं. के. आर. भारती - 'विपाशा', द्विमासिक, मार्च-अप्रैल, 2001, अंक- 91, वर्ष-16, पृ. 94
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 74

जिस घर के आगे दूध देनेवाले जानवर न हो तो वह घर ही नहीं है।''[1] अतः उपर्युक्त उद्धरण से परिलक्षित होता है कि संस्कृति में जानवरों का अक्षुण्य महत्त्व है। गाँव में तो जानवरों के प्रति अधिक ध्यान देने की परंपरा है।

5.3 बदलते मानव का सांस्कृतिक जीवन : ह्रासजन्य परिवर्तन -

हमें विरासत में एक गौरवशाली परंपरा मिली है, जिसके निर्माण में हजारों वर्ष लगे हैं। नैतिकता, कर्मवाद, सदाचार, अध्यात्मवाद आदि इसके मूलभूत सिद्धांत हैं। अनेक गुणों से संपन्न हमारी संस्कृति में स्वातंत्र्योत्तर काल में कुछ मूल्यों में विकासजन्य परिवर्तन परिलक्षित होता है जिससे हमारी संस्कृति को और विकसित होने में मदद हो रही है किंतु साथ-साथ कुछ गैरमूल्यों ने भी सांस्कृतिक जीवन में प्रवेश किया है जिससे हमारी संस्कृति में ह्रासजन्य परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। आधुनिकीकरण, वैज्ञानिकता, भोगवादिता आदि अनेक कारण हो सकते हैं जिससे परंपरागत भारतीय संस्कृति पर प्रश्नचिह्न उभर रहे हैं। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में कुछ सांस्कृतिक मूल्यों में हो रहे परिवर्तन का यथार्थ चित्रण किया है जो निम्नानुसार है-

5.3.1 संयुक्त परिवार विघटन -

भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार पद्धति पर अत्याधिक बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति के आदिकाल से ही पारिवारिक और ग्रहस्थ जीवन के आदर्श समाज में प्रचलित थे। डॉ. भक्तराज शास्त्री के अनुसार- ''भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में आर्यों की पारिवारिक व्यवस्था का रूप प्रदर्शित है। संयुक्त परिवार का उदय वैदिक युग से ही हो चुका था।''[2] स्पष्ट है कि प्राचीन काल से परिवार संयुक्त रूप में रहते आए हैं। संयुक्त कुटूंब प्रणाली में पारस्पारिक ईर्ष्या का परित्याग कर मिल-जुलकर रहने का पाठ पढ़ाया जाता है। एक-दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होने की भावना से ही संयुक्त परिवार का समर्थन होता रहा। ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा आदि अनेक संस्कार संयुक्त परिवार में होते थे। अच्छे संस्कारों के कारण पारिवारिक शांति बनी रहती थी। संयुक्त परिवार रूपी वृक्ष परिवार के सभी सदस्यों को सुरक्षा

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 25
2. डॉ. भक्तराज शास्त्री - आधुनिक हिंदी काव्य और संस्कृति, पृ. 161

प्रदान करता था। आज समय की आँधी ने इस वृक्ष की जड़ों को हिला दिया है। आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और महानगरीय परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। संयुक्त परिवार के विघटन के कारणों में "भावना के स्थान पर बौद्धिकता, व्यापकता के स्थान पर संकीर्णता, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि, आर्थिक स्वातंत्र्य, नारी विद्रोह, धर्म में अविश्वास आदि तथ्य प्रमुख रहे हैं।"[1] परिणामस्वरूप आज व्यक्ति परिवार के सच्चे सुख और संस्कारों से वंचित हो गया है। पश्चिम के लोग अपने इस भुल के दुष्परिणामों से परिचित हो गए हैं। जिससे आज वह 'वसुधैव कुटुंबकम' का महत्त्व जान रहे हैं। भारतीय उद्योगपति स्वराज पॉल के अनुसार- "आज के विश्व में संयुक्त कुटूंब प्रणाली न होने के कारण देश सीमाओं में बँट रहा है। आज के युवा पीढ़ी को संयुक्त कुटूंब प्रणाली की सबसे ज्यादा आवश्यकता है। विश्व में किस प्रकार का बर्ताव करना है, हमारे संबंध किस प्रकार के रखने हैं, इसकी जानकारी इसी से मिलती है।"[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि भावी पीढ़ी के उज्वल भविष्य के लिए हमें फिर से संयुक्त परिवार प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता है।

'सात आसमान' उपन्यास में असगर वजाहत ने संयुक्त परिवार विघटन की व्यथा को मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। कथा-नायक के नानाजी के वारिस मौतमुद्दौला मुगलकाल में नवाब थे। उन्होंने अपनी बेटी दाऊदी बेगम के शादी में महल, सफेद कोठी और दस एकड़ बाग भेंट स्वरूप दिया था जो नाना और उनके खानदान को विरासत के रूप में मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में आबादी बढ़ने के कारण इसमें इतना परिवर्तन हुआ कि "दस एकड़ बाग एक गुंजान मोहल्ले में बदल चुका था।"[3] सफेद कोठी के भी कई हिस्से हो गए थे। मौतमुद्दौला ने मेहनत से बनाए हुए महल की भी यही हालत होती है। परंपरागत मूल्यों का खयाल न रखनेवाली पीढ़ी महल को भी अनेक खंडों में विभाजित करती है- "महल के हर हिस्से में कई-कई हिस्से हो गए थे। कमरों तक में दीवारें उठाकर उन्हें बाँट लिया गया था। जिसके हिस्से में जो कमरा आया था उसने उसके सामने के आँगन में दीवारें उठा दी थीं।"[4] उपर्युक्त उद्धरण से परिलक्षित होता है कि

---

1. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप, पृ. 52
2. सं. विजया पाटील - दै. 'युवा' सकाळ, दि. 11-12-2003, पृ. 1
3. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 141
4. वही, पृ. 211-212

स्वातंत्र्योत्तरकालीन मानव में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का उदय हो रहा है। उसमें संयुक्त परिवार के प्रति उदासिनता दृष्टिगोचर होती है। परिणामस्वरूप विरासत के रूप में मिले पारंपारिक मूल्यों की रक्षा करने की बजाय वह उनका विखंड़न कर रहा है।

कथा-नायक का भी बहुत बड़ा संयुक्त परिवार था। खानदानी जमींदारी होने के कारण घर में रोज सैंकड़ों लोग आते जाते रहते थे। घर में हर वक्त चहल-पहल लगी रहती थी। हुजूर की मृत्यु से पहले उनकी इच्छा थी कि अपने दोनों बेटे मिल-जुलकर रहे- ''वो जानते थे कि खानदानों में झगड़े जायदाद की वजह से होते हैं।''[1] किंतु हुजूर की यह इच्छा पूर्ण नहीं होती है। ''उनके मौत के बाद सत्तन मियाँ ने किले पर ही हटकर अपने लिए खपरैल डलवा ली और अलग घर बनावा लिया।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि जमींदार संयुक्त परिवार में संपत्ति के कारण ही विघटन दृष्टिगोचर होता है।

सत्तन मियाँ और अब्बा मियाँ के अलग हो जाने के बाद अब्बा मियाँ जमीन और जानवरों के बाजार की देखभाल करते हैं। उनके बेटे अब्बा ने जानवरों के बाजार के आमदनी का हिस्सा मांगने के कारण बाप-बेटे अलग हो जाते हैं। कथा-नायक और उनके भाई शहर में नौकरी के लिए चले जाते हैं जिससे अब्बा और अम्माँ अकेले रह जाते हैं। अब्बा मियाँ की मृत्यु के बाद परिवार सुना प्ड़ जाता है। इतने बड़े खानदान का इतना दर्दनाक बिखराव अब्बा और अम्माँ के दिल में दर्द पैदा करता है। इसी दरम्यान अम्माँ की भी कॅन्सर की बीमारी से मृत्यु हो जाती है और अब्बा बिलकुल अकेले रह जाते हैं। अब्बा के अनेक कोशिशों के बाद भी कथा-नायक और उनके भाई शहर की अनेक संभावनाओं से भरी जिंदगी छोड़कर अब्बा के पास आने के लिए तैयार नहीं होते हैं। कथा-नायक अपने व्यथा के बारे में लिखते हैं- ''हमने उन्हें ये नहीं बताया कि एक बार बड़ा शहर जिसकी आँखों में घुप जाता है वो कितना स्वार्थी हो जाता है।''[3] इस तरह आत्मिक बंधनों और रिश्तों के टूटने के बाद घर में अकेले रहने के लिए अभिशप्त अब्बा की संत्रास, घुटन और पीड़ा में ही मृत्यु हो जाती है। उपन्यासकार असगर वजाहत जी ने यहाँ पर संयुक्त परिवार के विघटन से निर्माण हुई व्यथा का कारुणिक चित्रण किया हुआ परिलक्षित होता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 73
2. वही, पृ. 76
3. वही, पृ. 200

5.3.2 *बदलते आत्मकेंद्रित रिश्ते -*

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में परोपकार की वृत्ति दिखाई देती है। यह वृत्ति मानव के सभ्यता का परिमाप है। परोपकार के संस्कारों द्वारा मानव-जीवन सरस, सुंदर और आनंदमय बनाया जा सकता है- ''संस्कृति में मानव की योग्यता बढ़ाने का गुण हो सकता है, सभ्यता में सबके परोपकार की क्षमता। संस्कृति संपन्न व्यक्ति भी सार्वजनिक कल्याण के पथ से विमुख होने पर असभ्य है।''[1] स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में परोपकार को मानव-व्यक्तित्व विकास का साधन माना गया है। परोपकारी व्यक्ति ही समाज में सभ्य कहलाता है। किंतु विड़ंबना यह है कि आज मानव की परोपकारी वृत्ति का ह्रास हो रहा है। मनुष्य आत्मकेंद्रित बन गया है। वह अपने बीवी-बच्चों तक ही सीमित हो गया है। अपने परिवार, रिश्ते-नाते से अलग होकर वह अपनी अलग दुनिया बनाना चाहता है। समाज के कल्याण या अपने कर्तव्यों को भुलने लगा है; फलस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा खतरे में आ गई है। लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने उपन्यास में बदलते आत्मकेंद्रित रिश्तों का यथार्थ चित्रण किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

'सात आसमान' उपन्यास में महल के लोगों में आत्मकेंद्रितता अधिक मात्रा में दिखाई देती है। उनका हर एक का अपना-अपना अलग मकान था। विरासत स्वरूप मिली जायदाद के कारण कोई मेहनत या नौकरी नहीं करता था। उनकी आत्मकेंद्रित वृत्ति के बारे में लेखक की टिपण्णी दृष्टव्य है- ''यहाँ के लोग शहर के दीगर लोगों से कोई ताल्लुक न रखते थे। इनकी अपनी दुनिया थी और उसी में खुश और मस्त रहते थे।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि महल के लोग एक सीमित घेरे के अंदर सिमट गए हैं। उनकी यह आत्मकेंद्रितता उनके संकुचित वृत्ति की परिचायक है।

बड़े आगा महल में अकेले ही हैं। बीवी और बच्चे उन्हें पहले ही छोड़ चुके थे। महल में उनका कोई अस्तित्व नहीं था। खाने के लिए भी मोहताज हो गए थे। खाना दूसरों के यहाँ ही खाते थे। ज्यादातर खाने के वक्त अपने छोटे भाई खालू के पास आ जाते थे- ''खालू उन्हें बचा-खुचा दे देते थे। लेकिन एक दिन खालू ने भी उनसे साफ कह दिया कि वो खाने के वक्त यहाँ

---

1. डॉ. भक्तराज शास्त्री - आधुनिक हिंदी काव्य और संस्कृति, पृ. 100
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 142

न आया करें।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से मानव की आत्मकेंद्रित प्रवृति उजागर होती है। बड़े आगा बीमार पड़ने पर एक रिक्शेवाले के जरीए उन्हें सरकारी अस्पताल में पहुँचाया जाता है। घर का कोई उनसे मिलने नहीं जाता। रिक्शेवाला कभी-कभी उनके पास जाता था- ''बड़े आगा ने दो-चार बार उससे कहलवाया भी कि वे अपने भाईयों और भतीजों को आखरी बार देखना चाहते हैं लेकिन कोई नहीं गया। आसपास जिन मरीजों के बिस्तर थे उनके परिवारवाले बड़े आगा को कभी-कभी खाने-पीने की कोई चीज दे देते थे।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि जो आदमी आर्थिक दृष्टि से हिन होता है उसे समाज में कोई महत्त्व नहीं होता है। आज आर्थिक योग्यता के सामने खून के रिश्ते-नाते संबंध फिके पड़ते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

कथा-नायक और उनके भाई में भी आत्मकेंद्रित वृत्ति परिलक्षित होती है। कथा-नायक के पूर्वजों ने तन्मयता से संभालकर रखी जायदाद आखिर में केवल भावनिक एवं आत्मिक रिश्ता न रहने के कारण बिखर जाती है। कथा-नायक और उनके भाई अपने बीवी-बच्चों के साथ शहर में रहते हैं और अनेक संभावनाओं से भरी जिंदगी छोड़कर अपने पिताजी के पास नहीं आ सकते हैं। निष्कर्षतः आज के रिश्ते आत्मकेंद्रित हो रहे हैं। यह आत्मकेंद्रित रिश्ते अपने पूर्वजों की विरासत, संस्कार, सभ्यता, परोपकार, संस्कृति एवं समाज के प्रति कर्तव्यों को भूलकर अपनी ही दुनिया में लिप्त है।

5.3.3 नई-पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं में भेद -

उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में दो पीढ़ियों में आ रहे सांस्कृतिक मान्यताओं के बदलाव का यथार्थ चित्रण किया है। अब्बा मियाँ आधुनिकता के विरोधी थे। बीमारी के वक्त देसी दवाओं का इस्तमाल करते थे। पक्के मकान में रहने के खिलाफ थे- ''उनका कहना था कि पक्के मकान जाड़ों में ठंड़े और गर्मियों में गरम हो जाते हैं।''[3] उपर्युक्त कथन से अब्बा मियाँ की शास्त्रीय दृष्टि परिलक्षित होती है। अपनी परंपरा और शास्त्र का संगम उनके जीवन में झलकता है। इसके बिलकुल विरोध में उनके बेटे अब्बा नए आधुनिक फैशन का

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 209
2. वही, पृ. 216
3. वही, पृ. 30

घर बनवाते हैं। अब्बा मियाँ मोटर गाड़ी के खिलाफ थे क्योंकि उनका मशिन पर विश्वास नहीं था तो अब्बा इक्का बेचकर नई गाड़ी खरीदते हैं। अब्बा मियाँ नौकरी करने के विरोध में और उद्योग करने के पक्ष में थे- "नौकरी को वो गुलामी कहा करते थे।"[1] किंतु उनके दोनों पोतें शहरों में नौकरी करने लगते हैं। लेखक लिखते हैं- "अब्बा मियाँ को जब पता चला कि उनके दोनों पोतों ने नौकरियाँ कर ली हैं तो उदास हो गए।"[2] स्पष्ट है कि पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी की हर मान्यता गलत लगती है किंतु नई पीढ़ी को वह मान्यता जीवनावश्यक लगती है। अब्बा मियाँ के व्यवहार में सादगी और आत्मीयता परिलक्षित होती है। लेखक लिखते हैं- "अब्बा मियाँ को कभी कोई मिलने आ जाता था तो उसे घंटों बैठा लेते थे, लगातार बातें करते थे। उसे खाना खिलाए बगैर न जाने देते थे।"[3] उपर्युक्त उद्धरण से पूरानी पीढ़ी का रहन-सहन और संस्कृति परिलक्षित होती है। अब्बा मियाँ के ठीक विरोध में उनके बेटे अब्बा को किसी से मिलने-जुलने का कोई शौक न था। लेखक लिखते हैं- "अगर कभी कोई अजनबी मिलने आ जाता था तो झुँझला जाते थे और उससे जल्दी-जल्दी दोटूक बात करके घर के अंदर चले जाते थे।"[4] उपर्युक्त उद्धरण से नई और पुरानी पीढ़ी में आ रहे सांस्कृतिक बदलाव को चित्रित किया है।

5.3.4 पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव -

किसी भी देश की संस्कृति ही उस देश की परिचायक होती है। भारतीय संस्कृति की व्यापकता और समृद्धता विश्व-प्रसिद्ध है। लेकिन बदलते समयानुसार पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर हमारी संस्कृति की अवहेलना अथवा उपेक्षा की जा रही है। इस बात पर डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी ने चिंता प्रकट करते हुए कहा है- "वास्तव में हमें पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता के अंतर को समझना होगा। हमारी आधुनिकता की जड़े हमारी परंपरा के समृद्ध तत्वों में हैं, तभी हमारा वर्तमान रसयुक्त हो सकता है। अन्यथा ऊपर से लादी गई आधुनिकता पारस्पारिक एवं सामाजिक संबंधों के बिखराव का कारण बन जाएगी।"[5] अतः कहना गलत न होगा

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 36
2. वही, पृ. 194
3. वही, पृ. 178
4. वही, पृ. 183
5. डॉ. शंकर दयाल शर्मा - हमारे चिंतन की मूलधारा, पृ. 10

कि आज की पीढ़ी में आधुनिकता के नाम पर वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि रहन-सहन, आहार-विहार से लेकर उत्सव-त्यौहारों एवं परंपरागत मान्यताओं तक हर उस क्षेत्र का जिसका समावेश संस्कृति में होता है, उसमें काफी बदलाव आ रहा है। फिर भी आशा की एक किरण लेकर कमलेश्वर कहते हैं- ''भारतीय मानस बेशक आधुनिकता के नाम पर थोड़े समय के लिए भटक गया हो, लेकिन आनेवाले समय में वह पुनः अपनी जड़ों की ओर पूर्ण समर्पण व निष्ठा के साथ लौटेगा।''[1] स्पष्ट है कि इस विश्वास के पीछे सांस्कृतिक रूप से हमारे अतीत की समृद्धता ही है। असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में हमारी भारतीय संस्कृति की परंपरागत मान्यताओं पर पाश्चात्य संस्कृति के हो रहे प्रभाव को सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

स्वाधीनता पूर्व काल से ही अंग्रेजों के प्रभाव स्वरूप भारतीय जनमानस पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने लगा। लक्खु मियाँ पर भी अंग्रेजी संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। वह अपने परंपरागत रहन-सहन में बदल करके अंग्रेजों की संस्कृति के हिमायती बनते दृष्टिगोचर होते हैं। वह अपने पुरखों की फिटन बेचकर आस्टीन कार लाते हैं। वह इक्का और घोड़ा बेचते हैं। ''हाल के लिए कानपुर से नया फर्नीचर लाया गया। दो गैस बत्तियाँ खरीदी गईं। घर में घूरी-काँटे आए और हाल के पीछेवाले कमरे को 'गेस्ट रूम' के तौर पर सजाया गया।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से लक्खु कियाँ के अंग्रेजी संस्कृति के प्रभाव स्वरूप भारतीय संस्कृति के प्रति अनादर और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आदर स्पष्ट होता है।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् जो निष्कर्ष प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं-

1. असगर वजाहत के उपन्यास में मुगलकाल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के सांस्कृतिक परिवर्तन का पर्याप्त मात्रा में चित्रण हुआ है। उपन्यास में ज्यादातर मुसलमान समाज के सांस्कृतिक जीवन का समूचा चित्रण मिलता है।

---

1. सं. कमलेश्वर - 'नवभारत टाईम्स' - स्वर्ण जयंती वर्ष विशेषांक, जून 1999, पृ. 7
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 84

2. उपन्यास में सांस्कृतिक जीवन के विविध अंगों का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसमें रस्म-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वस्त्रालंकार, अंधविश्वास, उत्सव एवं त्यौहार आदि का समावेश मिलता है।
3. विवेच्य उपन्यास में लोग रस्म-रिवाज और परंपराप्रिय नजर आते हैं। वे आज भी अंधविश्वास पर यकीन करते हैं। रस्म-रिवाज परंपरा एवं अंधविश्वास को धर्म का दृढ़ आधार दिखाई देता है।
4. मुसलमानों में वस्त्रालंकार एवं खान-पान में वैविध्यता नजर आती है। उच्च वर्ग में ऊँचे, कीमती वस्त्रालंकार एवं स्वादयुक्त ऊँचे दर्जे का खान-पान परिलक्षित होता है। वस्त्र और खान-पान में मौसम के अनुसार परिवर्तन दिखाई देता है। उच्च वर्ग के खान-पान में शराब का अनन्यसाधारण महत्त्व दृष्टिगोचर होता है।
5. समाज में उपासना या धार्मिक कृत्यों को अक्षुण्ण महत्त्व दिखाई देता है। हर धर्म के लोग उपासना या धार्मिक कृत्यों का आग्रहपूर्वक पालन करते हैं।
6. लोगों के सांस्कृतिक जीवन में उत्सव एवं त्यौहारां का अक्षुण्ण महत्त्व दिखाई देता है। उपन्यास में मुगलकाल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक उत्सव एवं त्यौहारों में हो रहे परिवर्तन को दर्शाया है। हिंदू-मुसलमानों के अनेक उत्सव एवं त्यौहार मिल-जुलकर धुम-धाम से मनाने की परंपरा दृष्टिगोचर होती है।
7. नारी संस्कृति की सच्ची रक्षक है, किंतु मुगलकाल और अंग्रेजकाल में उसकी ज्यादा विड़ंबना हुई दृष्टिगोचर होती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी सम्मान की भावना बढ़ती हुई दिखाई देती है।
8. बहु-विवाह प्रथा पर रोक और रखैल प्रथा का निर्मूलन यह स्वातंत्र्योत्तरकालीन सांस्कृतिक विकास में बहुत बड़ी उपलब्धि है।
9. समाज में सीमित क्षेत्र से ही सही किंतु मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठापना होती हुई नजर आ रही है।
10. सांस्कृतिक जीवन में आयुर्वेद का महत्त्व फिर से बढ़ रहा है। पशु-प्रेम जैसे आदर्श-मूल्य गाँव की संस्कृति में आज भी नजर आते हैं।

11. सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला- संयुक्त परिवार आज विघटित हो रहे हैं। एकल परिवार के हिमायती समाज में नई पीढ़ी संस्कारहीन और पुरानी पीढ़ी आधारहीन दृष्टिगोचर होती है। शहरी सभ्यता का गाँव की संस्कृति के प्रति उदासीन दृष्टिकोण दिखाई देता है।

12. बदलते समाज में रिश्ते आत्मकेंद्रित हो रहे हैं। समाज में स्वार्थी प्रवृत्ति के साथ-साथ विकृत और भोगवादी प्रवृत्तियों का भी उदय हो रहा है।

13. परंपरागत पौराणिक निशानियाँ टूट रही हैं। परंपरागत पौराणिक वास्तुओं के प्रति आस्था का ह्रास होता हुआ दिखाई देता है। नई पीढ़ी पुरानी मान्यताओं का विरोध करती हुई नजर आती है।